

ओ३म्

# दयानन्दसन्देश

## आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मई २०१८

Date of Printing = 05-05-18  
प्रकाशन दिनांक= 05-05-18

वर्ष ४७ : अङ्क ७  
दयानन्दाब्द : १९४  
विक्रम-संवत् : ज्येष्ठ-अधिमास २०७५  
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११९

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य  
प्रकाशक व  
सम्पादक : धर्मपाल आर्य  
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री  
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

**दयानन्दसन्देश** (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,  
खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१

चलभाष : ९६५०५२२७७८

E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये  
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये  
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- |   |    |
|---|----|
| <input type="checkbox"/> जयचंदी मानसिकता....            | २  |
| <input type="checkbox"/> वेदोपदेश                       | ३  |
| <input type="checkbox"/> व्यूहों का महत्व               | ४  |
| <input type="checkbox"/> आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण  | ८  |
| <input type="checkbox"/> आर्यों! वैदिक धर्म का पालन करो | ११ |
| <input type="checkbox"/> यज्ञ अग्निहोत्र....            | १२ |
| <input type="checkbox"/> वैदिक कर्मफल व्यवस्था          | १४ |
| <input type="checkbox"/> प्यार की अन्धेरी.....          | १६ |
| <input type="checkbox"/> सबका आदि मूल.....              | २१ |
| <input type="checkbox"/> दिव्य मातृत्व....              | २३ |
| <input type="checkbox"/> परम आस्तिक                     | २६ |

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

**सत्यार्थप्रकाश**

प्रचार संस्करण  
स्पेशल (सजिल्द)

३००० रुपये सैकड़ा  
५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

## जयचंदी मानसिकता हमारी सबसे बड़ी शत्रु है।

(डॉ० विवेक आर्य, फ़ोन:-०८०९६६८८५५१९)

जयचंद का नाम आप सभी ने सुना होगा। पृथ्वीराज चौहान को हराने के लिए उसने मुहम्मद गौरी का साथ दिया था। उस काल के देशभक्त लोगों ने जयचंद को समझाया कि जयचंद! आगे मलेच्छ गौरी भारत पर आक्रमण करेगा, तो लाखों गौ कटेंगी, हजारों हिन्दु स्त्रियों का चीरहरण होगा, मंदिर-गुरूकुल तोड़े जायेंगे, अनेकों को जबरन मुसलमान बनाया जायेगा। सोच लो। जयचंद ने उत्तर दिया- 'चाहे कुछ भी हो जाये, मैं केवल और केवल पृथ्वीराज की बर्बादी चाहता हूँ'। सभी पाठकों को यह इतिहास मालूम है कि गौरी आया और पृथ्वीराज हारा। हमारे देश को जयचंद की उस गलती ने बर्बाद कर दिया।

रह- रहकर यही जयचंदी मानसिकता हमारे देश को आज भी बर्बाद करने पर तुली हुई है। यह जयचंद आज कौन हैं? ये वही हैं, जिन्हें कश्मीरी पंडितों का विस्थापन कभी नहीं दीखता और अलगाववाद को समर्थन करना इनका जन्मसिद्ध अधिकार है। ये वही हैं, जो पाकिस्तान समर्थक खालिस्तानियों का समर्थन करते हैं और हिन्दुओं को पंजाब से निकालने की बात करते हैं। ये वही हैं, जो देश भर में धड़ल्ले से हो रही गौहत्या पर आंख मूंद लेते हैं। मगर अगर किसी गौतस्कर को सरेआम दंड दे दिया जाये, तो मानवाधिकार का मुद्दा उठाकर उनका विरोध करते हैं। ये वही हैं, जो रोहिंग्या मुसलमानों को भारत में बसाने का समर्थन करते हैं। मगर पाकिस्तान से आये हुए पीडित हिन्दुओं के लिए कभी दो शब्द भी समर्थन में नहीं कहते। ये वही लोग हैं, जो बंगाल में दुर्गा- पूजा पर मूर्ति- विसर्जन का विरोध करते हैं मगर जुम्मे की नमाज के लिए शुक्रवार को सरकारी छुट्टी देने का समर्थन करते हैं। ये वही लोग हैं, जो लव जिहाद को केवल जुमला

बताते हैं और हिन्दुओं की लडकियों को भगाने वालों को कानूनी रूप से संरक्षण देते हैं। ये वही लोग हैं, जो देश भर में हो रहे ईसाई धर्मान्तरण को मिशनरियों का जन्मसिद्ध अधिकार बताते हैं और घर वापसी को धार्मिक स्वतंत्रता पर कुठाराघात बताते हैं। ये वही लोग हैं, जो नक्सालियों द्वारा वनवासी क्षेत्र में सैनिकों को मारे जाने पर खुशी जताते हैं। ये वही लोग हैं, जो जे.एन.यू में भारत तेरे टुकड़े होंगे, इंशाअल्लाह इंशाअल्लाह के नारे लगाते हैं। ये वही लोग हैं, जो असम से बंगलादेशी अवैध मुसलमानों को निकालने का पुरजोर विरोध करते हैं। ये वही लोग हैं, जो देश को समृद्ध बनाने के लिए इजराइल से आधुनिक तकनीक लेने का विरोध करते हैं और फिलिस्तीन के समर्थन में नारे लगाते हैं। ये वही लोग हैं, जो हर वर्ष वाघा सीमा पर जाकर मामबल्ली जलाते हैं मगर पाकिस्तान में रह रहे हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचार पर कभी कुछ नहीं बोलते। ये वही लोग हैं, जो दक्षिण भारत में हिंदी विरोध के नाम पर देश को तोड़ने वाली ताकतों का समर्थन करते हैं। ये वही लोग हैं, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर हिन्दू देवी- देवताओं के अश्लील चित्र बनाते हैं, बीफ फेस्टिवल मनाते हैं, महिषासुर बलिदान दिवस मनाते हैं और आर्यों को विदेशी बताते हैं। ये वही लोग हैं, जो आतंकवादी यामूब मेनन की फांसी की सजा रोकने के लिए रात में सुप्रीम कोर्ट खुलवाते हैं। ये वही लोग हैं, जो हवन यज्ञ एवं दाह संस्कार को प्रदूषण बताते हैं। ये वही लोग हैं, जिन्हें हिन्दू धर्म से संबंधित हर धार्मिक कर्मकांड अन्धविश्वास दीखता है, इन जयचंदों का पहचानो।

SC/ST एक्ट में भारत बंद करना और हिंसा करना

शेष पृष्ठ २७ पर

## ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और  
सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। सविता = ईश्वरः देवता। भुरिगजगती। निषादः स्वरः।।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।।

वह यज्ञ कैसा है, यह फिर उपदेश किया है।।

ओ३म् वसो पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।

देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।३।।

**पदार्थ** (वसोः) वसुर्यज्ञः (पवित्रम्) शुद्धिकारकं कर्म (असि) अस्ति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (शतधारम्) शतं = बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तम्। शतमिति बहुनामसु पठितम्। निघं० ३।१।। (वसोः) वसुर्यज्ञः (पवित्रम्) शुद्धिनिमित्तम् (असि) अस्ति (सहस्रधारम्) बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञम्। सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्।। निघं० ३।१।। (देवः) स्वयंप्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः (त्वा) तं यज्ञम् (सविता) सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता। सविता वै देवानां प्रसविता।। श० १।१।२।१७।। (पुनातु) पवित्रीकरोतु (वसोः) पूर्वोक्तो यज्ञः (पवित्रेण) पवित्रनिमित्तेन वेद-विज्ञानकर्मणा (शतधारेण) बहुविधाधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा (सुप्वा) सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन (काम्) कां कां वाचं (अधुक्षः) दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः। अत्र लडर्थे लुङ्।। अयं मंत्रः श० १।७।१।१४-१७ व्याख्यातः।।३।।

**प्रमाणार्थ** (शतम्) 'शत' शब्द निघं० (३।१) में बहुनामों में पढ़ा गया है। (सहस्रम्) 'सहस्र' शब्द का निघं० (३ / १) में बहुनामों में पाठ किया गया है। (सविता) शत० (१।१।२।१७) में 'सविता' का अर्थ 'देवों का उत्पन्न करने वाला' किया है। (अधुक्षः) यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।७।१।१४-१७) में की है। १।३।।

**सपदार्थान्वयः** यो वसोः = वसुर्यज्ञः शतधारं पवित्रमसि = शतधा शुद्धिकारकोऽस्ति

(शत-धारम्=बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तं पवित्रम्=शुद्धिकारकं कर्म), सहस्रधारं पवित्रमसि=सुखदोऽस्ति (सहस्रधारम्=बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञं, पवित्रम्=शुद्धिनिमित्तम्), त्वा=तं, तं यज्ञं सविता सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता देवः स्वयंप्रकाशस्वरूप परमेश्वरः पुनातु पवित्रीकरोतु।

हे जगदीश्वर! भवान् तेनास्माभिरनुष्ठितेन पवित्रे पवित्रनिमित्तेन वेदविज्ञानकर्मणा शतधारेण बहुविधाधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा सुप्वा=यज्ञेन सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन अस्मान् पुनातु पवित्रीकरोतु।

हे विद्वन्, जिज्ञासो वा! त्वं कां कां कां (वाचं) वाचमधुक्षः=प्रपूरयसि, वा प्रपूरयितुमिच्छसि दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः।।१।३।।

**भाषार्थ** : जो (वसोः) यज्ञ (शतधारम्) शतधा (पवित्रम्) शुद्धिकारक (असि) है अर्थात् बहुविध असंख्य विश्वों को धारण करने वाला, शुद्धिकारक कर्म है, (सहस्रधारम्) बहुविध ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला, (पवित्रम्) सुखदायक एवं शुद्धि का निमित्त (असि) है, (त्वा) उस यज्ञ को (सविता) सब वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी आदि तैंतीस देवों का उत्पादक (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (पुनातु) पवित्र करे।

हे जगदीश्वर! आप हम लोगों से सेवित (पवित्रेण) शेष पृष्ठ २० पर

## व्यूहों का महत्व

(उत्तरा नेरुर्कर, बंगलौर, मो०-६८४५०५८३१०)

उपवेदों में से एक है धनुर्वेद। इसमें युद्ध-संबंधी सभी जानकारी का समावेश है। जबकि आज इस विषय पर कोई संपूर्ण ग्रन्थ नहीं मिलता, तथापि अनेक ग्रन्थों में इसके कुछ-कुछ अंश पाए जाते हैं। इन ग्रन्थों का थोड़ा परस्पर विरोध भी पाया जाता है, परन्तु मुख्य रूप से सब एक ही बात कहते हैं। युद्ध-विद्या में व्यूह-रचना का विशेष महत्व है। आजकल की भाषा में इसे मोर्चाबन्दी कहा जाता है, जिसका अर्थ है युद्धक्षेत्र में सेना को एक विशिष्ट प्रकार से खड़ा करना। यह लेख व्यूहों से सम्बद्ध कुछ विषयों को बताकर, महाभारत में दिए गए चक्रव्यूह पर विशेष चर्चा करता है।

### सेना के अंग

व्यूहों को समझने से पहले, सेना के विभिन्न अंगों को जानना आवश्यक है। पुरातन काल में सेना के पांच प्रधान अंग हुआ करते थे- तलवार और ढाल लिए हुए पत्ति या पदाति या पैदल, धनुष-बाण लिए हुए धनुर्धारी (अथवा बन्दूकधारी), अश्वारोही सैनिक, घोड़े वाले रथ और हाथी पर आरूढ़ सैनिक। पदातियों और धनुर्धारियों को एक मानकर सेना को प्रायः चतुरंगिणी कहा गया है। तोप आदि यन्त्रों को छठा अंग माना जा सकता है। सभी सेनाओं में ये सभी अंग होने आवश्यक नहीं थे। सामान्यतः सेना में सबसे अधिक संख्या पदातियों की होती थी, फिर धनुर्धारियों की, फिर घुड़सवारों की, फिर रथों की और सबसे कम संख्या हाथियों की। सो, अग्नि-पुराण में कहा गया है कि प्रत्येक अश्व की रक्षा के लिए तीन पदाति/धनुर्धारी होने चाहिए, प्रत्येक हाथी के लिए तीन अश्व और पन्द्रह पदाति/धनुर्धारी और इतने ही अश्व और पदाति रथ के सामने हों। फिर जिस सेना में नौ हाथी हों, वह 'अनीक' कहलाती थी। महाभारत जैसे महायुद्ध में अक्षौहिणी नाम की महान सेना या सेना की

टुकड़ी हुआ करती थी, जिसमें २१,८७० हाथी, उतने ही रथ, ६५,६१० अश्व और १,०६,३५० पदाति/धनुर्धारी होते थे। कौरवों के खेमे में ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएं थीं - "अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत! (महाभारत, भीष्मपर्व में श्रीमद्भगवद्गीतापर्व, १८।१८)"- संजय धृतराष्ट्र को बताते हैं कि आपकी सेना में ग्यारह अक्षौहिणियां हैं। तथापि इन संख्याओं में समयानुसार फेर-बदल हो सकता था। व्यूह की रचना इस आयाम को ध्यान में रख कर भी की जाती थी।

### व्यूह का महत्व

महाभारत का जब युद्ध आरम्भ होने वाला था, तो युधिष्ठिर, कौरवों की विशाल सेना और अपनी छोटी सेना को देखकर, अर्जुन से कहते हैं-

महर्षेर्वचनात् तात वेदयन्ति बृहस्पतेः।

संहतान् योध्येदल्पान् कामं विस्तारयेद्बहून्॥

महा०, भीष्मपर्व में श्रीमद्भगवद्गीता पर्व, १६।४॥

अर्थात् महर्षि बृहस्पति के वचन से ज्ञात होता है कि यदि शत्रु की सेना कम हो, तो अपनी सेना को कम आकार वाला करके संगठन करना चाहिए, और यदि शत्रु-सेना अधिक हो, तो अपनी सेना को फैला के लड़ना चाहिए। अर्जुन ने, सेना की अल्पसंख्यता को देखते हुए, उनको वज्र-व्यूह बनाकर दिया, जिसमें भीम अग्रणी सैनिक थे। इस प्रकार, बहुत पहले ही यह जान लिया गया था कि व्यूह बनाने से छोटी सेना भी अपने से कहीं अधिक शक्तिशाली सेना को व्यूह द्वारा पराजित कर सकती है। इसी बात को वीरमित्रोदय के अन्तर्गत प्राप्त राजविजय नामक इस विषय पर सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है-

बलं व्यूहप्रौढं परबलविभेदेऽल्पमपि यद्भवेदूनं  
व्यूहैर्महदपि जये न क्षमबलम्॥

वीरमित्रोदय, राजविजय में राजचक्रलक्षण ।।

अर्थात् जो सेना अल्प भी है परन्तु व्यूह में सज्जित हो, वह बड़ी सेना का भी भेदन कर सकती है, परन्तु यदि महान् सेना भी व्यूह में संगठित न हो, तो वह जीत नहीं सकती ।

भारत से इतर प्राचीन सभ्यताओं को यदि हम देखें, तो व्यूह-रचना की कला पर विशेष ध्यान देने वाली रोमन् सभ्यता को पाते हैं। छोटी सेना होते हुए भी उन्होंने प्रायः सम्पूर्ण यूरोप पर अपनी विजय-पताका फहराई, तथापि भरतीय व्यूह-रचनाओं के सामने, वे व्यूह बड़े निम्न कोटि के प्रतीत होते हैं! यवनी अलक्षेन्द्र ने भी बड़े भूभाग पर अपना झण्डा फहराया, परन्तु मैंने उनकी सेना के आयोजन के विषय में कहीं नहीं पढ़ा है। तथापि पोरस जैसे भारतीय राजाओं की महान् सेनाओं से भिड़ने के लिए अवश्य ही उसने भी व्यूह का प्रयोग किया होगा। दूसरी ओर, प्राचीन यूरोप में असभ्य (बार्बेरियन्) देश एक-दूसरे पर बिना किसी संगठन के ही टूट पड़ते थे। ऐसे युद्ध में बहुत अधिक मारकाट होती थी।

सम्भवतः यह विद्या भारत से ही यूरोप आदि देशों में गई हो, क्योंकि यहां तो अथर्ववेद में भी व्यूह द्वारा सेना को निबद्ध करने का उल्लेख प्राप्त होता है-

**उत्तिष्ठ त्वं देवजनाबुदे सेनया सह ।**

**भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परिवारय ।।**

**अथर्व. ११।६।५।।**

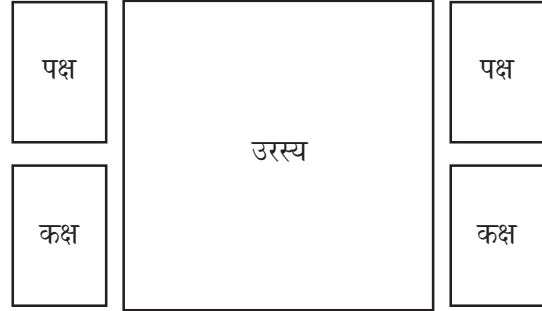
अर्थात् हे अर्बुदि नामक देवरूपी सेनापति! तू सेना के साथ खड़ा हो जा और अमित्रों की सेना को भोग नामक सांप की कुण्डली जैसे व्यूह से घेर कर मार दे। वेद की जैसी पद्धति है, उसके अनुसार एक व्यूह को बता देने से अन्य व्यूहों की परिकल्पना मनुष्यों को स्वयं करनी चाहिए।<sup>१</sup>

**व्यूह संरचना** - विष्णुधर्मोत्तर ग्रन्थ से हमें ज्ञात होता है कि व्यूह को मुख्य रूप से पांच भागों में संगठित करना चाहिए-

-१) उरस्थ -सेना का मध्य भाग,

१ अथर्ववेद के ११वें काण्ड के नवें और दशम सूक्तों में सेना और आयुध सम्बन्धी और भी अनेकों तथ्य दिए गए हैं।

२-३) पक्ष- उरस्थ के दाएं और बाएं भाग में स्थित,  
४-५) कक्ष (अथवा बन्धपक्ष) - पक्ष के पीछे दाएं और बाएं भाग में (देखें चित्र १: मूलभूत व्यूहरचना)



**चित्र १: मूलभूत व्यूहरचना**

उरस्थ प्रधानतया आक्रमण करने वाला विभाग होता है और अन्य उसकी रक्षा के लिए। उरस्थ में सामने शूरवीरों को रखना चाहिए, जो आक्रमण करने में घबराएं नहीं, नहीं तो सेना पहले ही तितर-बितर हो जाएगी। इसीलिए, जैसे हमने ऊपर देखा, अर्जुन ने भीम को सेना के अग्रभाग में नियुक्त किया था।

राजा को युद्ध में भाग नहीं लेना चाहिए, अपितु ऊपर कही टुकड़ियों के पीछे एक अन्य टुकड़ी- प्रतिग्रह - में अस्त्र-शस्त्रों से सन्नद्ध होकर युद्ध का संचालन करना चाहिए (**स्वयं राजा न योद्धव्यमपि सर्वाशस्त्रशालिना (विष्णुधर्मोत्तर)**), क्योंकि उसके हार जाने पर युद्ध समाप्त ही हो जाता है (**युद्धं हि नायकप्राणं हन्यते तदनायकम् (अग्निपुराण, अध्याय २४२)**)। तथापि यदि उसे युद्ध में भाग लेना पड़े, जैसा महाभारत में भी युधिष्ठिर और दुर्योधन को लेना पड़ा, तब उसके चारों ओर शूरवीरों को घेरा बनाकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। मध्य, पृष्ठ और कोटी (किनारों) नाम की टुकड़ियां भी बनाई जा सकती हैं। इन्हें मिलाकर सप्तांग व्यूह बन जाता है-

**उरस्थकक्षपक्षास्तु कल्प्यानेतान् प्रचक्षते ।**

**उरः कक्षौ पक्षौ च मध्यं पृष्ठं प्रतिग्रहः ।**

**कोटी च व्यूहशास्त्रज्ञैः सप्ताङ्गो व्यूह उच्यते ।**

**उरस्थकक्षपक्षास्तु व्यूहोऽयं सप्रतिग्रहः ।।**

**अग्निपुराण, अध्याय २४२ ।।**

व्यूहों के मुख्य भेद चार माने गए हैं -

१) **मण्डल-** जिसमें सेना गोलाकार स्थिति में चारों ओर मुंह किए होती है।

२) **असंहत-** जिसमें विभिन्न टुकड़ियां अलग-अलग खड़ी होती हैं, जैसा चित्र १ में दर्शाया गया है। अन्यो में ये भाग जुड़ कर खड़े होंगे।

३) **भोग-** सर्प की कुण्डली के समान खड़ा होना। चक्रव्यूह इसी के अन्तर्गत आता है (देखें चित्र २)।

४) **दण्ड-** डण्डे के समान बाएं से दाएं तिरछा खड़ा होना-

**मण्डलासंहतो भोगो दण्डस्ते बहुधा शृणु ।  
तिर्यग्वृत्तिस्तु दण्डः स्याद्भोगोऽन्यावृत्तिरेव च ।  
मण्डलः सर्वतो वृत्तिः पृथग्वृत्तिरसंहतः ॥  
अग्निपुराण, अध्याय २४२ ॥**



**चित्र २: चक्रव्यूह में सेना की स्थिति - काली रेखा के अनुसार**

इन्हीं के अन्तर्गत आने वाले कुछ प्रसिद्ध व्यूह हैं- वज्र, श्येन, शकट, अग्नि, सर्प, सिंह, पद्म।

जबकि व्यूह का चयन युद्धक्षेत्र, शत्रु और अपनी सेना का बल, शत्रु का व्यूह, आदि, देखकर किया जाता है, जिन अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए कोई भी व्यूह अभेद हो सकता है, परन्तु चक्रव्यूह सब से उत्तम व्यूहों में से एक है - **सापर्णाग्निचक्रसञ्ज्ञाश्च व्यूहेषु बलवत्तराः (वीरमित्रोदय)।** उसमें अधिक सेना की भी आवश्यकता होती है जो कि कुण्डलाकार में खड़ी हो और अधिक भूमि की भी। इसमें केवल एक घुसने का मार्ग होता है, जिसको भी शत्रु के घुसने के बाद बन्द किया जा सकता

है। इस विषय में आगे और बताया जायेगा।

सेनांगों के संयोजन का मूलभूत तरीका इस प्रकार था - सबसे आगे पदाति, उनके पीछे धनुर्धर, फिर अश्वारोही, फिर रथारोही और अन्त में हस्त्यारोही -

**पुरस्ताच्चर्मिणो देया देयास्तदनु धन्विनः।**

**धन्विनामनु चाश्वीयं रथास्तदनु योजयेत्।**

**रथानां कुञ्जराश्वानुदातव्याः पृथिवीक्षिता...**

**।विष्णुधर्मोत्तर।।**

परन्तु इस रचना को भी परिस्थित्यानुसार बदला जा सकता था। ये क्रम घटती संख्यानुसार है- सामान्यतः किसी भी सेना में पैदल सैनिक सब से अधिक, धनुष या बन्दूकधारी उससे कम, अश्वारोही उससे कम, रथ उससे कम और हाथी सबसे कम होते हैं। और ये आक्रमण के क्रम में भी है- पैदल सेना को अश्वसेना, अश्वों को रथों से और रथों को हाथियों से नष्ट किया जाता है। सभी सैनानियों को इतनी दूरी पर खड़ा किया जाना चाहिए कि वे बिना एक दूसरे से भिड़े लड़ सकें। इसलिए ऊपर का क्रम बढ़ती दूरी के क्रम में भी है।

दूसरे के सामने पहले कितने हों, इस संख्या में विभिन्न ग्रन्थों में कुछ मतभेद है। एक सांकेतिक संख्या मैंने ऊपर दी थी। एक और इस प्रकार है-

**व्यूहे भेदावहं कुर्याद्रिपुव्यूहस्य पार्थिवः।**

**गजस्य देया रक्षार्थं चत्वारस्तु रथा द्विज।।**

**रथस्य चाश्वाश्चत्वारोऽश्वस्य तस्य च वर्मिणः।**

**वर्मिभिश्च समास्तत्र धन्विनः परिकीर्तिता।।**

**-विष्णुधर्मोत्तर।।**

अर्थात् राजा शत्रु के व्यूह को भेदने वाला ऐसा व्यूह बनाए, जिसमें प्रत्येक हाथी की रक्षा के लिए ४ रथ रखे जाएं, प्रत्येक रथ के लिए ४ अश्व, प्रत्येक अश्वारोही के लिए ४ कवच पहने खड्गधारी और उतने ही धनुर्धर हों।

**महाभारत में चक्रव्यूह**

महाभारत युद्ध के तेरहवें दिन दुर्योधन ने द्रोणाचार्य पर आक्षेप किया कि उनकी दृष्टि में कौरव ही शत्रु थे, इसीलिए वे पाण्डवों को मार नहीं रहे थे। इसपर दुःखित और विचलित होकर द्रोणाचार्य ने प्रतिज्ञा की कि आज

पाण्डवों के किसी श्रेष्ठ महारथी का वे वध करेंगे। इसके लिए उन्होंने अर्जुन को युद्धक्षेत्र के दूसरे कोने में युद्ध में लगवा दिया और यहाँ चक्रव्यूह का सृजन किया। व्यास इस व्यूह के विषय में लिखते हैं-

**तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन् व्यरोचत ।**

**चरन् मध्यन्दिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥**

**तं चाभिमन्युर्वचनात् पितुर्ज्येष्ठस्य भारत ।**

**विभेद दुर्भेदं सङ्ख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥**

**स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान् सहस्रशः ।**

**षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशं गतः ॥**

**महाभारत, द्रोणर्व में अभिमन्युवधपर्व, ३३।१८-१९ ॥**

अर्थात् तेरहवें दिन का संक्षिप्त विवरण देते हुए संजय धृतराष्ट्र से कहता है, “ हे राजन्! वहाँ द्रोण ने जो (चक्रव्यूह) रचा, वह (इतना दुर्भेद था कि शत्रु को सन्ताप देता हुआ सा) मध्यन्दिन के सूर्य के समान देखने में ही कष्टदायक था। तथापि हे भारत (=भरत के वंशज)! अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर उस दिन युद्ध में इस अत्यन्त दुर्भेद व्यूह का अनेक बार भेदन किया। इस दुष्कर कार्य को अकेले ही करके उसने सहस्रों वीरों को मारा, परन्तु अन्त में छः वीरों से एक साथ भिड़ कर, वह दुःशासन के पुत्र के हाथों मारा गया।

आगे जो युद्ध का विस्तृत वर्णन दिया गया है, उससे ज्ञात होता है कि यह व्यूह इतना ‘चमक’ इसलिए रहा था क्योंकि द्रोण ने उसमें इन्द्र के समान युद्ध-कौशल में तेजस्वी सभी राजाओं को खड़ा कर रखा था। चक्र के अरों के स्थान में सारे राजकुमारों को खड़ा किया गया था। व्यास व्यूह में लगे योद्धाओं की कुल संख्या दश सहस्र बताते हैं। राजा दुर्योधन उस चक्र के बीचों-बीच विराजमान था। चोटि के महारथी- कर्ण, दुःशासन और कृपाचार्य ने उसको रक्षा- घेरे में घेर रखा था। यह भी व्यूह-संरचना की एक प्रणाली थी कि, यदि राजा लड़ रहा होता था, तो वह सबसे सुरक्षित स्थान में, सबसे मानी योद्धाओं से रक्षित, खड़ा होता था।

चक्रव्यूह की विशेषता यह थी कि उसको भेदने के

लिए- उसके मध्य तक जाने के लिए- उसके अन्दर प्रवेश करना आवश्यक था। बाहर के किनारों में खड़ी सेना इतनी अधिक होती थी कि वहाँ से भेदना प्रायः असम्भव होता है। उसका एक ही द्वार होता था, जिसको भेदने का भी एक रहस्य था। इसीलिए युधिष्ठिर को अभिमन्यु से यह कार्य करवाना पड़ा, जब कि वह एक कुमार ही था। वह अभिमन्यु को कहते हैं, “तुम अर्जुन, श्रीकृष्ण, और प्रद्युम्न - ये चार जन ही चक्रव्यूह को भेदना जानते हैं। क्योंकि वे अन्य यहाँ नहीं हैं, इसलिए तुम पर यह कार्य सौंपना पड रहा है।”

तब अभिमन्यु कहता है कि, आपत्ति पड़ने पर, वह व्यूह से बाहर निकलना नहीं जानता। यह इस व्यूह की दूसरी विशिष्टता थी- अन्दर घुसने के साथ-साथ इससे बाहर निकलना भी जानना आवश्यक था।

युधिष्ठिर उत्तर देते हैं, “तुम रास्ता बनाओ। हम तुम्हारे पीछे-पीछे आते हैं।” परन्तु ऐसा हो नहीं पाया और पाण्डव सेना बाहर ही रह गई। यह इस व्यूह की तीसरी विशेषता थी। उसमें भेद हो जाने पर, उस छिद्र को शीघ्र बन्द किया जा सकता था।

चौथी विशेषता हम चित्र २ से देख सकते हैं। उपरिलिखित जो संजय ने बताया कि अभिमन्यु ने अनेकों बार व्यूह को भेदा, वह चित्र से स्पष्ट हो जाता है। सेना की छोटी टुकड़ी, या जैसे अकेला अभिमन्यु, जब व्यूह में प्रवेश भी कर लेते, तो पग-पग पर उन्हें चारों ओर से घेरा जा सकता था। और ऐसा ही वर्णन महाभारत में मिलता है। अनेकों बार अभिमन्यु को घेरा गया, अनेकों बार उसने सबको परास्त किया, अनेकों बार कौरव सेना का वह अंश भाग खडा हुआ, तथापि अभिमन्यु को लडते रहने पड़ा, क्योंकि कुण्डलाकार व्यूह में उसको अन्दर एक-एक कुण्डली की तरह ही शत्रु पर कसता जाता था, जिससे अन्ततः शत्रु उसके अन्दर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। दूसरी ओर, व्यूह में खड़ी सेना को अपने सैनिकों को व्यूह में आगे पीछे करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी।

जो व्यूहों के वर्णन पुराने ग्रन्थों में पाए जाते हैं, वे शेष पृष्ठ १० पर

## आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण

(धर्मपाल आर्य)

दुनिया में शायद की कोई ऐसा देश होगा, जहाँ आर्य- समाज का नाम न हो। जिन देशों में, जिन प्रदेशों में आर्यसमाज है, उन देशों और प्रदेशों में आर्यसमाज से जुड़े हुए बुजुर्गों का, युवाओं का, पुरुषों का, स्त्रियों का धार्मिक व सामाजिक दृष्टिकोण संकुचित न होकर व्यापक हो जाता है और निजी न होकर सार्वजनिक हो जाता है, स्वार्थ का न होकर परमार्थ का हो जाता है, कृतघ्नता का न होकर कृतज्ञता का हो जाता है, नास्तिकता का न होकर आस्तिकता का हो जाता है और अन्याय, असत्य व अधर्म का न होकर न्याय, सत्य व धर्म का हो जाता है। आर्य- समाज का हर दृष्टिकोण वेद- शास्त्रों पर आधारित है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जब इस देश की सामाजिक व्यवस्था को डॉवाडोल होते देखा, स्वामी जी ने जब इस देश की सामाजिक व्यवस्था को विविध प्रकार की विडम्बनाओं और विषमताओं के व्यूह में फँसते देखा, महर्षि ने जब देखा कि इस देश की सामाजिक व्यवस्था जाति-आधारित भेदभाव से ग्रसित है। लिङ्ग के आधार पर भेदभाव की शिकार है, सामाजिक व्यवस्था पाप और पाखण्ड की दल-दल में धँसी हुई है, तो इस दुरावस्था से मुक्त करने के लिए आपने एक संघर्ष का ऐलान कर दिया। स्वामी जी ने वेद-शास्त्रों और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के आधार पर न केवल देश की, अपितु समूचे विश्व की सामाजिक व्यवस्था का सुलझा हुआ मानचित्र हम सब के सामने रखा। महर्षि मनु जातिव्यवस्था के नहीं, अपितु वर्ण व्यवस्था के सूत्रधार थे। उन (महर्षि मनु) के अनुसार समाज में किसी के वर्ण का निर्धारण उस जन्मजात वंश से नहीं, अपितु उसके कर्मों के आधार पर होना चाहिए क्योंकि जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं। उसके कर्म ही उसे ऊँचा या नीचा बनाते हैं अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण का निर्धारण उसके कर्मों के आधार पर ही होता है। “जन्मना जायते शूद्रः

संस्काराद्बिद्वज उच्यते” अर्थात् जन्म से सभी शूद्र होते हैं, संस्कारों के कारण ही मनुष्य अर्थात् ब्राह्मणादि बनता है। जातिव्यवस्था को महर्षि ने सदा ही समाज के लिए अभिशाप मानते हुए उसका दृढ़ता के साथ विरोध किया। जातिगत सामाजिक व्यवस्था का दुष्परिणाम समाज के लिए घातक सिद्ध हुआ। जातिगत सामाजिक व्यवस्था से समाज में जो खाई पैदा हुई, उस खाई को मिटाने के लिए ऋषिवर ने वेदाधारित सामाजिक (वर्ण) व्यवस्था का न केवल अनुमोदन किया, अपितु उसका जोर-शोर से प्रचार-प्रसार भी किया। जातिगत सामाजिक व्यवस्था से समाज में विभाजन और विद्रोह का खतरा मंडराता रहता है और राष्ट्र तथा समाज की एकता को गृह-युद्ध जैसी आन्तरिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जबकि वर्णव्यवस्था समाज व राष्ट्र में समरसता, न्याय, सत्य, धर्म, और सर्वाङ्गीण विकास की मुख्य घटक है। महर्षि जी ने राष्ट्र में व्याप्त जातिव्यवस्था तथा वेद व मनुस्मृति पर आधारित वर्णव्यवस्था दोनों का ही गहन अध्ययन किया और अध्ययन मनन चिन्तन के बाद पाया कि जातिगत सामाजिक व्यवस्था वर्णागत सामाजिक व्यवस्था में जमीन-आसमान का अन्तर है। इन दोनों (वर्ण व्यवस्था व जाति व्यवस्था) के मापदण्डों में भी जमीन-आसमान का अन्तर है। एक (जाति) का निर्धारण जन्म से होता है, तो दूसरे (वर्ण) का निर्धारण कर्म से होता है। जातिव्यवस्था से सामाजिक व्यवस्था संकुचित होती है, जबकि वर्ण-व्यवस्था से सामाजिक व्यवस्था में व्यापकता आती है। जाति- व्यवस्था से समाज में असमानता की खाई बढती है, जबकि वर्ण- व्यवस्था से समाज में समानता की संभावनाएं बढती हैं। जाति- व्यवस्था समाज को तोड़ने वाली होती है, जबकि वर्ण- व्यवस्था समाज को जोड़ने वाली होती है। कुल मिलाकर जातिगत सामाजिक व्यवस्था व वर्णाधारित सामाजिक- व्यवस्था का जब



तुलनात्मक अध्ययन करते हैं, तो पता चलता है कि जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से वर्णाधारित सामाजिक व्यवस्था ही श्रेष्ठ है और हर प्रकार से समाज के लिए उपयोगी है। आज हमें समाज में जो विसंगतियाँ दिखाई दे रही हैं, उनके कारणों पर यदि निष्पक्षता से विचार करें, तो जातिव्यवस्था उस (सामाजिक विसंगति) का एक बहुत बड़ा कारण है। वर्तमान में हमारा राष्ट्र जिन चुनौतियों के दौर से गुजर रहा है, उसका एक मुख्य कारण जातिवाद और जातिवाद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था है। वर्तमान राजनीति उपरोक्त जातिगत व्यवस्था का ही एक हिस्सा बनी हुई है। बाहर से तो हर राजनीतिक दल कहता है कि हम और हमारी पार्टी जातिवाद और जातिवाद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ है। लेकिन पर्दे के पीछे हर राजनीतिक दल की पैतरेबाजी जातिवाद पर आधारित होती है। हर राजनीतिक दल अपनी राजनीतिक बिसात को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जातिवाद की चौसर पर बिछाता है। महर्षि दयानन्द जी ने सामाजिक जीवन के लिए नासूर बने इस जातिवाद को और जाति पर आधारित व्यवस्था को समूल नष्ट करने का भागीरथ प्रयास किया तथा एक ऐसे समाज के निर्माण का बीड़ा उठाया, जिसमें वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) का निर्धारण जाति अथवा वंश के आधार पर नहीं, अपितु गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर है। ऊंच-नीच के भेदभाव को नष्ट करने के लिए, समाज व राष्ट्र में समानता का वातावरण बनाने के लिए, सामाजिक समरसता को बढ़ाने के लिए, सामाजिक एकता के लिए, सामाजिक समृद्धि के लिए और उन्नतिशील समाज के निर्माण के लिए तथा निर्माण के महान् कार्य को आगे बढ़ाने के लिए १० अप्रैल, १८७५ को मुम्बई के काकड़वाडी में आर्यसमाज की स्थापना की। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण भी वही था, जो ऋषि दयानन्द का था। वेद में सामाजिक दृष्टिकोण भी वही था जो ऋषि दयानन्द जी का था। वेद में सामाजिक स्वरूप उस की एक पावन ऋचा में झलकता है।

**“मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्,  
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।**

**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।”** अर्थात् हे प्रभो! सभी प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। सभी प्राणियों को मैं मित्र की दृष्टि से देखूँ और हम सभी एक दूसरे को परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें। इस मन्त्र में सामाजिक स्वरूप को बड़ी सहजता के साथ चित्रित किया गया है। जहाँ सभी को मित्रता की दृष्टि से देखें, वहाँ श्रेष्ठ समाज व श्रेष्ठ राष्ट्र बनने की संभावना को कैसे नकारा जा सकता है? आर्यसमाज ने अपने जन्म के साथ ही ऋषि द्वारा अन्वेषित वेद व स्मृति में वर्णित समाज को बनाने के सत्प्रयास किये, जिसके परिणामस्वरूप देश ने स्वाधीनता का सुप्रभात देखा और समाज ने व राष्ट्र ने ऋषिवर की प्रेरणा व आर्यसमाज के ऐतिहासिक संघर्ष व बलिदान से पराधीनता समेत अनेक सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध अंगड़ाई ली। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण आर्य-समाज के इन दो नियमों में स्पष्ट झलकता है।

**प्रथम** “संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।”

**दशम** “सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।”

आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण ‘सर्वहितकारी नियम’ अर्थात् जिन नियमों में समाज के और समस्त प्राणिमात्र के हित निहित हों, तो हम सर्वप्रथम अपने हितकारी नियमों को मानने की अपेक्षा समाज के सर्वहितकारी नियमों का पालन करें। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है- “जाति, लिंग, वर्ग आदि के भेदभावों से ऊपर उठते हुए समाज की शारीरिक उन्नति करना, आत्मिक उन्नति करना, सामाजिक उन्नति करना और समाज का उपकार करना। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है- वर्णव्यवस्था के आधार पर ऐसे समाज का निर्माण करना, जिसमें किसी उच्चता को परखने की कसौटी जाति न होकर गुण हों। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है कि तथाकथित उंची अथवा नीची-जाति के कारण किसी का विकास अवरूद्ध न हो। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है कि कोई यदि तथाकथित निम्न

जाति में जन्मा है लेकिन गुणी है, तो उसे कमजोरी का घूंट न पीना पड़े। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है कि लिंग के आधार पर और तथाकथित दलित होने के कारण कोई अपने न्यायोचित अधिकारों से वञ्चित ना रहे। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है राष्ट्र व समाज जातिवाद, प्रान्तवाद, परिवारवाद भाषावाद आदि खतरनाकवादों के जहर से मुक्त हो। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है-

“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथापूर्वं संजानाना उपासते” ॥

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।

पूर्वजों की भांति तुम सब कर्तव्य के मानी बनो ॥

आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है **‘वसुधैव कुटुम्बकम्’** अर्थात् सारी वसुधा ही अपना एक परिवार है। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है

**‘सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**

**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥’**

सभी निरोग हों, सभी सुखी हों, सभी भद्र (पवित्र) दृष्टि व दृष्टिकोण रखें, कोई भी दुःखी न रहे। आर्यसमाज का सामाजिक दृष्टिकोण है समाज वरुण के तीन पाशों (आध्यात्मिक दुःख आधिदैविक दुःख और आधिभौतिक दुःख) से मुक्त हो। आर्यसमाज ने अपने सामाजिक दृष्टिकोण को साकार करने के लिए “कृण्वन्तो विश्वमार्यम्” अर्थात् “सारे विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाओ”

पृष्ठ ७ का शेष

आधुनिक युग के युद्ध के लिए उपयुक्त नहीं प्रतीत होते। तथापि सेना के सभी भागों में व्यूह का महत्व आज भी मना जाता है। इसलिए भूमिगत सेना ही नहीं, वायुसेना और नौसेना भी व्यूह बना के चलते हैं। व्यूह बनाने से सेना की अव्याहत गति होती है। अपनी कम-से-कम हानि के साथ-साथ, वह शत्रु पर अधिकतम प्रहार कर पाती है। शत्रु के छिद्रों को जान, व्यूह से वह उनका भरसक लाभ उठा सकती है। यही कुछ कारण हैं कि व्यूह द्वारा हारा युद्ध भी जीता जा सकता है। इसका

वाला विश्व-व्यापी अभियान चलाया जो समय-समय पर भिन्न-भिन्न आन्दोलनों के रूप में दुनियां के सामने अपनी सफलता की मिसाल प्रस्तुत करता रहा है। आर्य-समाज के विषय में जिन लोगों को जानकारी नहीं या फिर अधकचरी जानकारी है, ऐसे महानुभाव जरूर ये कहते हुए मिल जायेंगे कि आर्यसमाज देवी-देवताओं की पूजा में, धर्म-कर्म में आस्था नहीं रखता है, तो इस धिसे-पिटे आरोप पर अपने प्रबुद्ध पाठकों को यही कहना चाहूंगा कि आर्यसमाज पुराणों के कल्पित देवी-देवताओं और पुराणों के कल्पित ईश्वर में आस्था नहीं रखता है, अपितु आर्यसमाज वेदोक्त, शास्त्रोक्त और उपनिषदोक्त चेतन देवी-देवताओं (माता-पिता, अतिथि, आचार्य) की पूजा (सेवा-शुश्रूषा) में विश्वास रखता है। यही मन्तव्य ईश्वर के विषय में है। आर्यसमाज के सामाजिक दृष्टिकोण में जातिवाद, परिवारवाद, भाषावाद पर आधारित भेदभावों के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसे में अनेकों उदाहरण दे सकता हूँ कि जिन्हें समाज में जन्मना जाति के कारण निम्न वर्ग का माना जाता था लेकिन आर्यसमाज में उनकी विद्या व गुणों के कारण आर्यसमाज में इन्हें पण्डित के रूप में, विद्वान् के रूप में उच्च सम्मान से विभूषित किया गया। यदि कोई गुणी है विद्वान है, मेधावी है, प्रतिभावान है, तो उसके लिए आर्यसमाज में सम्मान की कोई कमी नहीं, यह बात मैं पूरे दावे के साथ कह सकता हूँ।

□□

सबसे बड़ा प्रमाण महाभारत में मिलता है, जहाँ पाण्डवों की छोटी-सी सेना ने कौरवों के महान बल को धराशायी कर दिया। इसलिए सम्भव है कि पुरानी युद्धविद्या, कुछ अंश में, आज भी प्रयोग में आ सके।

वेदों में भी युद्धविद्या की अनेक बार चर्चा आती है। वेदों के इन अंशों को समझने के लिए धनुर्वेद जानना आवश्यक है। इसीलिए इस विद्या को उपवेद माना गया है। अवश्य ही वेदाध्येताओं को इस विद्या का भी, अधिक नहीं तो थोड़ा, लाभ अवश्य उठाना चाहिए।

□□

## आर्यों! वैदिक धर्म का पालन करो।

(पं. नन्दलाल निर्भय, पलवल, फोन:-०६८९३८४५७७४)

जिस समय महर्षि दयानन्द सरस्वती संसार में आए थे, उस समय संसार की भारी दुर्दशा थी। नर-नारी, धर्म-कर्म, वेद पठन-पाठन, संध्या-हवन, पुण्य-दान, जप-तप भूल चुके थे। यज्ञों में नर बलि, पशुबलि, पक्षीबलि दी जाती थी। स्त्रियों और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। बाल- विवाह, अनमेल विवाह होते थे और कहीं सदाचार, ब्रह्मचर्य की शिक्षा नहीं दी जाती थी। उस समय लाखों बाल विधवाएं रोती थीं, जिनमें से हजारों विधर्मी, ईसाई, मुसलमानों के घरों को बसा रही थीं। अर्थात् सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था।

नर-नारी कर्म प्रधानता का वैदिक सिद्धांत त्याग कर जन्म-जाति को बढ़ावा दे रहे थे। वेदों के स्थान पर पुराणों की कथा होती थी। सेवा करने वाले गरीब कमजोर व्यक्तियों को नीच समझकर ठुकराया जाता था। इसी का परिणाम था रोजाना राम, कृष्ण के वंशज हजारों की संख्या में ईसाई, मुसलमान बन रहे थे। उस समय विदेशयात्रा महापाप समझा जाता था। विधर्मी लोग हमें असभ्य-जंगली, महामूर्ख बताते थे। ईसाई पादरी वेदों को गडरियों के गीत बताते थे। भारतीयों में पाखण्डी लोगों ने यह धारणा बिठा दी थी कि वेदों को शंखासुर नाम का राक्षस पाताल लेकर चला गया है। अर्थात् वेद इस संसार में नहीं है।

उस समय धर्म की हालत आटे के दीपक की तरह थी, जिसे घर के अंदर रख दें, तो चूहे खा जाएं और यदि बाहर रख दें, तो कौए लेकर उड़ जाएं। उस समय भंगी-चमार के छूने पर, तेली के आगे आ जाने पर धर्म नष्ट होना माना जाता था। भारत के राजा लोग अज्ञानतावश आपस में लड़ते रहते थे। विदेशी अंग्रेज शासक हमारी इस फूट का भरपूर लाभ उठा रहे थे। उस समय वैदिक सभ्यता, संस्कृति, गौ-ब्राह्मणों का कोई रक्षक नहीं था, अपितु सभी भक्षक बने हुए थे। ऐसे भयानक समय में महर्षि देव दयानन्द का इस देवभूमि में प्रादुर्भाव हुआ था। स्वामी जी ने संसार के भले के लिए अपने भरे पूरे परिवार को छोड़ा और जीवन के

सभी सुखों का त्याग कर मानवता की सेवा करने का बीड़ा उठाया। महर्षि दयानन्द ने स्वामी विरजानन्द सरस्वती के पास जाकर उनकी सेवा की और वैदिक ज्ञान प्राप्त किया। शिक्षा पूर्ण होने पर दक्षिणा के रूप में गुरुदेव को संसार में वेद ज्ञान का प्रचार करने का वचन दिया, जिसे जीवन भर निभाया।

स्वामी जी ने भारत में घूम-घूमकर वेद प्रचार किया और नर-नारियों को कर्म प्रधानता का महत्त्व समझाया। उन्होंने ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्त्यामी, अजन्मा, अनादि, अजर, अमर, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता बताया। मूर्ति-पूजा को अज्ञानता का मूल बताकर मूर्ति-पूजा से होने वाली हानियों का बोध कराया। उन्होंने नारी जाति और गऊ माता को पूज्य बताया तथा स्त्रियों व शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार दिलाया। स्वामी जी ने सबसे पहले स्वराज्य का मंत्र भारतवासियों को दिया और विदेशीराज्य महादुःखदायी बताया। उन्होंने भारत के सभी राजाओं को मिलकर चलने और अपना एक नेता बनाने के लिए प्रेरित किया। स्वामी जी ने राव युधिष्ठिर से मिलकर सर्वप्रथम रेवाड़ी (हरियाणा) में गौशाला की स्थापना कराई। स्वामी जी यह अच्छी तरह जानते थे कि गौ जैसा उपकारी पशु संसार में कोई नहीं है इसलिए उन्होंने गोकर्णानिधि की रचना करके गौसेवा को परमधर्म बताया।

स्वामी जी ने भारत के सभी मतों को मानने वाले विद्वानों को समझाया कि अगर तुम संसार का भला चाहते हो, तो एक ईश्वर, एक धर्म, एक ग्रंथ, एक अभिवादन मानकर वेद- ज्ञान का प्रचार करो। बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि उन स्वार्थी, दम्भी लोगों ने स्वामी जी की सलाह नहीं मानी। स्वार्थी पाखण्डी लोगों ने उन पर गोबर फेंका, पत्थर बरसाए और उन्हें सत्रह बार विषपान कराया। किन्तु वे अपने धर्म- पथ से विचलित नहीं हुए। अगर स्वामी दयानन्द इस धरती पर नहीं आते, तो आज कोई भी वेद शास्त्रों की चर्चा करने वाला, राम, कृष्ण आदि शेष पृष्ठ २२ पर

## “यज्ञ अग्निहोत्र का स्वरूप व इससे होने वाले लाभ”

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो०:-०६४१२६८५१२१)

यज्ञ श्रेष्ठ कर्म को कहते हैं। इसमें सत्य बोलना, वेद पढ़ना व वेदों का प्रचार करना, माता-पिता, आचार्य व अतिथियों की सेवा करना सहित ईश्वरोपासना एवं यज्ञ अग्निहोत्र-देवयज्ञ सभी कर्म सम्मिलित होते हैं। यज्ञ के अर्थों में देवपूजा, संगतिकरण एवं दान भी सम्मिलित है। देव- पूजा का सरल अर्थ देवों की पूजा होता है। देव जड़ व चेतन दो प्रकार के हैं। चेतन देवों में ईश्वर, माता-पिता, विद्वान, आचार्य, परोपकारी व देशभक्त लोग, समाज के हितकारी मनुष्यजन व सभी चेतन प्राणी, जिनसे हमें व दूसरों को लाभ पहुंचता है, वे सभी सम्मिलित हैं। जो विद्वान व महात्मा प्रवृत्ति के लोग दूसरों को अपने अधिकार की निजी वस्तुयें व ज्ञान आदि देते हैं, वह भी देव कहे जाते हैं। जड़ देवताओं में सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अग्नि, जल, वायु, वृक्ष, वनस्पति, अन्न व औषधियों के वृक्ष व पौधे आदि सभी आ जाते हैं। इन सभी पदार्थों से हम किसी न किसी रूप में लाभान्वित होते हैं। इनसे हमें जो उपकार व लाभ होता है, उसके बदले में ये हमसे कुछ मांगते नहीं और न हम इन्हें कुछ देते हैं। अतः इनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना व इनसे मिलने वाले लाभों को त्यागपूर्वक भोग करना ही इनकी पूजा है। पूजा का अर्थ सत्कार करना होता है। हम जड़ व चेतन सभी देवताओं का यदि यथायोग्य सत्कार करें, तो यह देवपूजा का सत्य स्वरूप होता है। यज्ञ का दूसरा प्रमुख अर्थ संगतिकरण है। संगतिकरण में हमें अपने से अधिक, समान व कम ज्ञान वाले लोगों के साथ संगति व मेलजोल करना होता है। अधिक ज्ञान वालों से हम ज्ञान लेते व शंका समाधान आदि करते हैं। समान बुद्धि व सामर्थ्य वालों को यदि ज्ञान व किसी वस्तु की आवश्यकता हो, तो दे सकते हैं और कम ज्ञान वालों को हम ज्ञान आदि देते हैं। इससे देने व लेने वाले दोनों ही पक्ष लाभान्वित होते हैं। हम देते हैं, तो हम देवता कहे जाते हैं और हमें उससे सत्कर्म की पूँजी अर्जित होती है और यदि लेते हैं, तो जिनसे लेते हैं उनके शुभ-कर्मों की वृद्धि होती है। संगतिकरण का ही परिणाम है कि आज हम दूसरों के श्रम से उत्पन्न वस्तुओं का उपभोग कर पाते

हैं व दूसरे हमारे ज्ञान व कर्मों से लाभान्वित हो पाते हैं। दान ज्ञान, धन, पदार्थ व अधिकारों आदि का होता है। अन्न व वस्त्र आदि का भी दान किया जाता है। किसी की सेवा करना भी एक प्रकार का दान ही होता है। इससे समाज में सुख की वृद्धि और दुःख की निवृत्ति होती है। ईश्वरीय ज्ञान वेद व ऋषियों के ग्रन्थ मनुष्यों को यज्ञ अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण व दान करने की प्रेरणा करते हैं व सबको यह कार्य करने चाहिए।

यज्ञ का एक अंग देवयज्ञ व अग्निहोत्र कहलाता है। अग्निहोत्र में हम एक यज्ञकुण्ड का प्रयोग करते हैं, जिससे हम आम्र आदि की सूखी समिधाओं से जो प्रदूषण न करें या कम से कम करें, उनसे अग्नि प्रज्वलित करते हैं व उसे यज्ञ की समाप्ति तक प्रज्वलित रखते हैं। इस यज्ञ की अग्नि में हम गोघृत व साकल्य की आहुति देते हैं। यज्ञ का साकल्य चार मुख्य पदार्थों से बनता है। गोघृत तो मुख्य यज्ञ द्रव्य है ही। इसके अतिरिक्त रोगनाशक व पुष्टिकारक औषधि, वनस्पतियां अर्थात् सोमलता, गुग्गल आदि, शक्कर, केसर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ तथा सूखे मेवे बादाम, काजू, नारियल, छुआरा, किशमिश आदि द्रव्य होते हैं। वेदों के मन्त्र, जिनका विधान व विनियोग यज्ञ में किया गया है, उनको बोलकर स्वाहा कहकर थोड़ी मात्रा में घृत व साकल्य को अग्नि पर श्रद्धा के साथ आहूत करते हैं। ऐसा क्यों करते हैं? इसलिए कि देशी गाय का घृत रोगनाशक, पुष्टिकारक, प्रदूषण की निवृत्ति करने वाला, विष का प्रभाव नष्ट करने वाला, कीटाणुनाशक, बल वा शक्तिवर्धक, शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में सहायक व रोगों से रक्षा करने में उपयोगी होता है। अग्नि में घृत व अन्य पदार्थों को डालने से वह सूक्ष्म होकर अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। एक मिर्च के उदाहरण से बात को समझ सकते हैं। यदि अग्नि में एक सूखी लाल मिर्च डाल दी जाये, तो उसके प्रभाव से वहां व कुछ दूरी तक मनुष्यों का बैठना अशक्य हो जाता है। मिर्च के जलने से उसका प्रभाव अत्यधिक बढ़ने से ऐसा होता है। इससे नाक - आंख से छींकें व अश्रुकणों का प्रवाह होने लगता है, जो अत्यन्त कष्टदायक होता है। इसी

प्रकार से यज्ञ में साकल्य की भी साथ-साथ मन्त्र बोलकर आहुति देते हैं। इससे साकल्य भी अति सूक्ष्म होकर हमारे स्वास्थ्य को लाभ पहुंचाने के साथ प्रदूषण दूर करने सहित वायु शुद्धि, आकाशस्थ जल की शुद्धि व सूक्ष्म कीटाणुओं के लिए लाभप्रद होता है। स्वास्थ्य को तो इससे विशेष लाभ होता ही है। बहुत से रोग ठीक हो जाते हैं और यज्ञ करने वालों को बहुत से रोग होते ही नहीं।

हमारे सामने देश की भीषण भोपाल गैस त्रासदी का उदाहरण है। जब यह त्रासदी हुई, तो विषैली गैस के रिसाव से आसपास के सहस्रों की संख्या में लोग मृत्यु को प्राप्त हुए थे, अन्य बहुत से विकलांग व अनेक रोगों से ग्रसित हो गये थे। एक परिवार दैनिक यज्ञ करता था। वह यज्ञ कर रहा था। उस परिवार पर गैस के रिसाव का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। हमने पढ़ा है कि उनकी गाय आदि पशुओं को भी यज्ञ का लाभ हुआ व वह भी सब सुरक्षित बच गये थे। यहाँ हम आर्यसमाज के एक कीर्तिशेष विद्वान पं. वीरसेन वेदश्रमी जी की भी चर्चा करना चाहते हैं। उन्होंने यज्ञों से बहुत से हृदय रोगियों को स्वस्थ किया था। कुछ बहरे व गूंगे लोग भी यज्ञ के प्रभाव से सुनने व बोलने लगे थे। पं. वेदश्रमी जी ने यज्ञ के द्वारा अनेक बार अनेक स्थानों पर वर्षा भी कराई थी, जहां वर्षा नहीं हो रही थी। उनकी पुस्तक वैदिक सम्पदा एवं याज्ञिक आचार संहिता वैदिक साहित्य में महत्वपूर्ण ग्रन्थों में सम्मिलित हैं। यह सब लाभ यज्ञ करने से यज्ञकर्ता वा यजमान को मिलते हैं। यहाँ इतना ही समझना है कि यज्ञ एक वैज्ञानिक कृत्य है। यह लाभ विज्ञान की प्रक्रिया व सिद्धांतों के पालन से मिलते हैं। यज्ञ में कहीं कोई किसी प्रकार का अन्धविश्वास नहीं है। इतना अवश्य है कि यज्ञ को ईश्वर का ध्यान करते हुए पूर्ण श्रद्धा भक्ति से करना चाहिए। ऐसा करने पर यज्ञ का अधिक लाभ होता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों व परीक्षणों से भी यज्ञ के उपर्युक्त लाभों की पुष्टि हुई है। यज्ञ में गोघृत का प्रयोग होता है। हमने लगभग तीस वर्ष पूर्व सार्वदेशिक साप्ताहिक पत्र में पढ़ा था कि यूरोप की खोजों के अनुसार गाय के गोबर से लीपे हुए घर या कुटिया पर रेडियों धर्मिता का किंचित कुप्रभाव नहीं होता। यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप व लाभों पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। एक पुस्तक डा. रामप्रकाश जी की यज्ञ विमर्श है। एक अंग्रेजी पुस्तक 'अग्निहोत्र' के नाम से आर्यजगत के सुविख्यात विद्वान स्वामी डा. सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने लिखी थी। डा.

रामनाथ वेदालंकार जी की यज्ञ मीमांसा भी यज्ञ पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक है। यज्ञ पर ऋषि दयानन्द जी ने भी सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में प्रकाश डाला है। उनके लोगों से जो वार्तालाप हुए व उन्होंने जो प्रवचन आदि किये, उसमें भी यज्ञ के महत्व व लाभों का उल्लेख आया है। पूना में दिये उनके प्रवचनों में एक प्रवचन यज्ञ पर ही है।

अग्निहोत्र यज्ञ का एक आवश्यक अंग है। यज्ञ करते हुए व अग्नि में आहुति देते हुए वेदमंत्रों का उच्चारण, आचमन, इन्द्रियस्पर्श, स्तुति-प्रार्थना-उपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण व अनेकानेक आहुतियों के मन्त्र बोल कर अग्नि देवता को घृत व साकल्य की आहुति को समर्पित करना। यज्ञ में विनियुक्त मंत्रों के अपने अर्थ होते हैं। यह अर्थ सभी यजमानों को ज्ञात होने चाहिए। आर्यसमाज में यज्ञों की जो पुस्तकें हैं, उनमें से कुछ में यह मन्त्रार्थ दिये होते हैं। इन्हें यज्ञ से पूर्व मन्त्र के पदार्थ सहित पढ़ा जा सकता है व पढ़ लेना चाहिए। मन्त्र यजमान को स्मरण होने चाहिये। जब मन्त्र बोले, तो मन यज्ञ, मन्त्र व उसके अर्थ पर केन्द्रित हो वा एकाग्र हो। ऐसा करने से मन्त्रों में की गई प्रार्थनाओं के अनुरूप फल यजमान को ईश्वर की व्यवस्था से मिलता है। संसार में किसी मत, पन्थ, समुदाय आदि में अग्निहोत्र करते हुए इन उच्च भावनाओं से प्रार्थना करने का विधान नहीं है। इसीलिए शास्त्रकारों का यह अनुमान सही है कि यज्ञकर्म करने से मनुष्य की आत्मोन्नति होकर मोक्ष प्राप्ति में सफलता प्राप्त होती है। अतः यज्ञ करते हुए वेदमंत्रों को एकाग्रता के साथ बोलकर उनके अर्थों पर भी साथ-साथ विचारते रहना चाहिए।

भौतिक पक्ष पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि बृहद यज्ञों में अधिक मात्रा में घृत व सामग्री के जलने का लाभ तो होता ही है परन्तु भीड़भाड़ में यज्ञ करने से यजमान व दर्शकों का मन पूर्णतः एकाग्र नहीं होता। उनकी प्रवृत्ति आन्तरिक न होकर बाह्य होने की सम्भावना होती है। इसलिए लाभ भी उसी के अनुरूप होता है। यदि यज्ञ को घर में परिवार सहित बैठकर पूर्ण श्रद्धा व एकाग्रता से करेंगे, तो उसका लाभ अधिक होगा, ऐसा हमें प्रतीत होता है। हमने इस लेख में अपने ज्ञान व अनुभव पर आधारित निजी विचार लिखे हैं। कुछ विद्वानों के इससे पृथक् विचार भी हो सकते हैं। हम आशा करते हैं कि इस लेख के विचारों से पाठकों की यज्ञ विषयक जानकारी में कुछ वृद्धि हो सकती है।

## वैदिक कर्मफल व्यवस्था

(कृष्ण चन्द्र गर्ग, पंचकूला, दूरभा.:-०१७२-४०१०६७६)

सुख दुःख का कारण मनुष्य के कर्म (काम या कार्य) हैं, ग्रह नहीं। मनुष्य जैसा काम करता है, वैसा ही फल पाता है। ऐसा काम, जिससे किसी का भला हुआ हो उसके बदले में ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होता है और ऐसा काम, जिससे किसी का बुरा हुआ हो, उसके बदले में मनुष्य को दुख मिलता है। ईश्वर पूर्णरूप से न्यायकारी है। वह किसी की सिफारिश नहीं मानता। वह रिश्वत नहीं लेता। उसका कोई एजेंट या पीर, पैगम्बर या अवतार नहीं है।

अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कामों का फल अलग-अलग भोगना पड़ता है। वे एक-दूसरे को काटकर बराबर नहीं करते। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कामों का अलग अलग हिसाब रहता है। ऐसा नहीं है कि एक अच्छा काम कर दिया और एक उतना ही बुरा काम कर दिया और वे बराबर होकर कट गए और हमें कोई फल न मिले। दोनों का अलग अलग फल भोगना पड़ता है अच्छे और बुरे कामों के फलस्वरूप सुख और दुःख साथ-साथ भी चल सकते हैं। कुछ अच्छे कामों का फल हम भोग रहे हैं, साथ ही कुछ बुरे कार्यों का फल भी भोग रहे हैं।

मनुष्य जन्म में किए कामों के अनुसार ही आगे का जन्म मिलता है। अगर बुरे काम की बजाए अच्छे काम ज्यादा हों, तो अगला जन्म मनुष्य का ही मिलता है। अगर बुरे काम ज्यादा हों, तो अगला जन्म कामों के अनुसार पशु, पक्षी, कीड़ा मकौड़ा आदि कुछ भी हो सकता है। यह बात सही नहीं है कि चौरासी लाख योनियों में से होकर मनुष्य जन्म फिर से मिलता है। हमारे सामने ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां बच्चों को अपने पूर्व जन्म का ज्ञान है और वे पूर्व जन्म में भी मनुष्य योनि में ही थे।

भाग्य या प्रारब्ध क्या है? मनुष्य जो भी अच्छा या बुरा काम करता है उसके बदले में उसके अनुसार उसे जो फल मिलता है, वही उसका भाग्य है। इस प्रकार अपना

भाग्य मनुष्य खुद बनाता है, कोई और नहीं। कोई भी किसी दूसरे का भाग्य न बना सकता है और न ही बिगाड़ सकता है। किसान ने खेती करके जो फसल घर में लाकर रखली वह उसका भाग्य है, उसकी अपनी मेहनत का फल।

किसी भी अच्छे या बुरे काम का फल शासन-प्रशासन भी दे सकता है। अगर शासन-प्रशासन न दे, तो ईश्वर तो देता ही है। कोई भी कर्म बिना फल के नहीं रहता।

जैसे- माता-पिता अपनी संतानों को बुरे कर्मों से हटाकर अच्छे कामों में लगाने की कोशिश करते हैं, वैसे ही ईश्वर भी करता है। जब मनुष्य कोई बुरा काम करने लगता है, तब उसे अन्दर से भय, शंका, लज्जा महसूस होती है और जब वह कोई अच्छा काम करने लगता है, उसे आनन्द, उत्साह, अभय, निश्चिंता महसूस होती है। ये दोनों प्रकार की भावनाएं ईश्वर की प्रेरणा होती है।

मनुष्य कुकर्म क्यों करता है? अविद्या अर्थात् मान लेना कि कुकर्म के फल से बचने का उपाय कर लेंगे तथा राग, द्वेष और लालच के कारण भी मनुष्य कुकर्म कर बैठता है।

अथर्ववेद (१२-३-४८) - कर्म का फल करने वाले को ही मिलता है। इसमें किसी और का सहारा नहीं होता, न मित्रों का साथ मिलता है कर्मफल-प्राप्ति में कमी या अधिकता नहीं होती। जिसने जैसा कर्म किया, उसको वैसा ही और उतना ही फल मिलता है।

महाभारत में युद्ध की समाप्ति पर गन्धारी श्री कृष्ण से कहती है- 'निश्चय ही पूर्व जन्म में मैंने पाप कर्म किए हैं, जो मैं अपने पुत्रों, पौत्रों और भाईयों को मरा हुआ देख रही हूँ।'

महाभारत में ही शान्ति पर्व में कहा गया है- जैसे बछड़ा हजारों गऊओं के बीच में भी अपनी मां के पास ही जाता है। ऐसे ही कर्मफल कर्म के करने वाले के पास

ही जाता है।

मनुस्मृति (४-२४०)- जीव अकेला ही जन्म और मरण को प्राप्त होता है। अकेला ही अच्छे कर्मों का फल सुख और बुरे कामों का फल दुःख के रूप में भोगता है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति ३७-१६) - करोड़ों कल्प बीत जाने पर भी बिना कर्मफल को भोगे, उनसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

चाणक्य नीति- किए हुए अच्छे और बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगना पडता है।

गीता (५-१५) - हमारे सुखों और दुःखों के लिए परमात्मा उत्तरदायी नहीं है, बल्कि हमारे अच्छे और बुरे कर्म उत्तरदायी हैं। अज्ञानता के कारण हम अपने सुख दुःख के लिए परमात्मा को उत्तरदायी ठहराते हैं, जबकि वह न हमारे पापों के लिए जिम्मेदार है और न ही पुण्यों के लिए जिम्मेदार है।

वाल्मीकि रामायण (युद्ध काण्ड ६३२२) - रावण के मारे जाने के बाद जब हनुमान लंका में सीता को राम की विजय का समाचार सुनाने गए, तब सीता ने हनुमान से कहा - मैंने यह सब दुःख पूर्व जन्म में किए हुए कामों के कारण ही पाया है क्योंकि अपना किया हुआ ही भोगा जाता है।

वाल्मीकि रामायण (अरण्य काण्ड ३५-१७, १८, १९, २०) - सीताहरण के पश्चात श्री राम सीता के वियोग में विलाप करते हुए कहते हैं - हे लक्ष्मण! मैं समझता हूँ कि इस सारी भूमि पर मेरे समान बुरे काम करने वाला पापी पुरुष और कोई नहीं है क्योंकि एक के पश्चात एक दुःख मेरे हृदय और मन को चीर रहे हैं। पूर्व जन्म में मैंने निश्चय ही एक के बाद एक बहुत से पाप किए हैं। उन्हीं पापों का फल आज मुझे मिल रहा है। राज्य हाथ से छिन गया, अपने लोगों से वियोग हो गया, पिता जी परलोक सिधार गए, माता जी से बिछोह गया। इन घटनाओं को याद करके मेरा हृदय शोक से भर जाता है। हे लक्ष्मण! ये सारे दुःख इस रमणीक बन में आने पर शान्त हो गए थे। परन्तु आज सीता के वियोग से वे सभी भूले हुए दुःख उसी प्रकार फिर से ताजा हो गए हैं, जैसे लकड़ी डालने से आग जल उठती है।

पश्चाताप (मनुस्मृति ११-२३०) - पापकर्म होने पर उस पर पश्चाताप करके मनुष्य उस पापभावना से छूट जाता है। फिर वह पापकर्म नहीं करता। यही पश्चाताप का फल है। जो कर चुका, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा। किए कर्म के फल से बचने का शास्त्रों में कहीं कोई उपाय नहीं बताया। पाप का फल अवश्य मिलेगा यह सोचकर मनुष्य को पापकर्म नहीं करना चाहिए।

कुर्म से बचने के उपाय- अपने आप को ईश्वर के साथ जोड़ने से मनुष्य पापकर्म से बच सकता है। यह जानकर कि ईश्वर हर समय मेरे साथ है, मेरे सभी कामों को देखता है तथा उसके अनुसार मुझे फल भी देता है मनुष्य दुष्कर्म से बच सकता है।

महाभारत- धर्म का सर्वस्व जानना चाहते हो, तो सुनो। दूसरों का जो व्यवहार आपको अपने प्रतिकूल (विरुद्ध) लगता है अर्थात् दूसरों का जो व्यवहार आपको पसन्द नहीं, वैसा व्यवहार आप दूसरों के साथ मत करो।

जैसे अग्नि अपने पास पड़ी लकड़ी को जला देती है ऐसे ही वेद का ज्ञान मनुष्य में पाप की भावना को जला देता है अर्थात् वेद के स्वाध्याय से मनुष्य में पापकर्म करने की भावना समाप्त हो जाती है।

यजुर्वेद (४०,३)- जो मनुष्य अपनी आत्मा का हनन करते हैं अर्थात् मन में और जानते हैं, वाणी से और बोलते हैं और करते कुछ ओर हैं, वे ही मनुष्य असुर (दैत्य, राक्षस, पिशाच आदि) हैं। वे कभी भी आनन्द को प्राप्त नहीं करते। जो आत्मा, मन, वाणी और कर्म से कपटरहित एक सा आचरण करते हैं वे ही देवता हैं, वे इस लोक और परलोक में सुख भोगते हैं।

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः। - सत्य की ही जीत होती है, झूट की नहीं। सत्य पर चलकर ही मनुष्य देवता बनता है। ऋषि लोग सत्य पर चलकर ही परमात्मा को पाकर आनन्द प्राप्त करते हैं।

ईश्वर की न्याय व्यवस्था में जो किसी का जितना भला करेगा, उतना ही सुख मिलेगा और जितना किसी का बुरा करेगा, उतना ही उसे दुःख मिलेगा। इस प्रकार सत्य और पक्षपातरहित न्याय का आचरण तथा परोपकार के कार्य ही सुखरूप फल देने वाले हैं।



## प्यार की अन्धेरी गलियों में

(राजेशार्य आड़ा, मो०:-०६६६९२६९३९८)

प्रिय पाठकवृन्द! विदेशी विकृति से भरी फिल्मों,समाचारों,इंटरनेट व मोबाइल के दुरुपयोग ने देश के वातावरण को ऐसा विषैला बना दिया है कि वर्तमान युवा पीढ़ी पर कामवासना और बेशर्मी का भूत सवार हो गया है। एक ही गांव के लड़के-लड़की (जिन्हें भाई-बहिन कहना चाहिए) माता-पिता व सम्बन्धियों का प्यार व डर छोड़कर कोर्ट में जाकर शादी कर लेते हैं और सरकार उन्हें सब प्रकार की सुरक्षा देती है। यह भारत के मूल ढांचे को नष्ट करने का षड़यंत्र है। उत्तर प्रदेश और केरल में ऐसे विवाह भी सामने आए हैं, जिनमें मुस्लिम लड़कों से हिन्दू लड़कियों ने शादी की है। यह जवानी का अन्धापन भी हो सकता है और मुस्लिम फिल्म कलाकारों व मौलवियों के 'लव जिहाद' का षड़यंत्र भी। क्योंकि इस पीढ़ी को इतिहास में यह तो पढ़ाया जाता है कि तुगलक काल में अबोहर की बालिका बीबी नैला ने अपना अपूर्व त्याग दिखाकर सारे प्रदेश को यवनों के आक्रमण से बचा लिया। उसने यवन सेनापति रज्जब से शादी कर ली। इसी के पुत्र फिरोजशाह तुगलक ने बाद में दिल्ली में राज किया।

पर यह नहीं बताया जाता कि मुस्लिमों के साथ विवाह करने वाली एक भी प्रसिद्ध हिन्दू महिला न तो हिन्दू रह पाई और न अपनी सन्तानों को ही हिन्दू बना पाई। इतना ही नहीं, इनसे उत्पन्न ग्यासुद्दीन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, जहांगीर व शाहजहां आदि सबके सब हिन्दुओं के प्रति अत्याचारी भी हुए। ग्यासुद्दीन तुगलक दिल्ली का पहला सुल्तान था,जिसने अपने नाम के साथ (१३२० ई.) 'गाजी' (काफिरों का वध करने वाला) शब्द जोड़ा था। उसने हिन्दू मूर्तियों और मन्दिरों को नष्ट किया और हिन्दुओं के पास उनकी परिश्रम की कमाई में से गुजारे लायक धन ही रहने दिया जाता

था। तब ग्यासुद्दीन दियालपुर का सूबेदार था, तो उसने भट्टी राजपूत रजमल की सुन्दर बेटी का विवाह अपने छोटे भाई रज्जब से करवाने के लिए राजा रनमल की प्रजा पर खूब अत्याचार किये। तब लड़की (बीबी नैला) ने अपने पिता से कहा कि मेरे दिये जाने से परिवार इस अवश्यम्भावी नाश से बच सके, तो मैं यह विवाह स्वीकार करती हूँ। इसी का पुत्र हुआ फिरोजशाह तुगलक, जिसने हिन्दू धर्म के विनाश और इस्लाम के पोषण के लिए सभी सम्भव उपाय अपनाये थे। न केवल मन्दिर तोड़े, अपितु धर्म-प्रचारक ब्राह्मण तक जीवित जलवा दिये थे। जहांगीर और शाहजहां ने तो मुस्लिम लड़की से विवाह करने वाले हिन्दू के लिए मृत्युदण्ड तक का विधान किया था।

'जोधा-अकबर' जैसे नाटकों से भ्रमित व अनियन्त्रित हुए यौवन को यह न भूलना चाहिए कि उपरोक्त हिन्दू महिलाएँ इस्लामिक अत्याचार से पीड़ित होने के कारण विवाह करने को विवश हुई थीं, अन्धे प्रेम के कारण नहीं। यह ठीक है कि गन्धर्व (प्रेम) विवाह प्राचीन काल से ही इस देश में चल रहे हैं, पर वे अधिकतर क्षत्रियों में ही चलते थे। हमें केवल घटनाओं पर ही नहीं, परिणाम पर भी ध्यान देना चाहिए। आज हम महाभारत में वर्णित ऐसे दो विवाहों पर विचार करते हैं,जिनमें युवक युवती ने माता-पिता आदि बड़ों की उपेक्षा कर स्वयं विवाह किया और बाद में उन्हें पछताना पड़ा।

राजा दुष्यन्त ने कण्व ऋषि की पालित पुत्री से एकान्त में गन्धर्व विवाह का प्रस्ताव रखा, तो शकुन्तला ने इस विषय में ऋषि कण्व की उपेक्षा कर अपने पुत्र को युवराज बनाने की शर्त पर विवाह स्वीकार कर लिया। पर बाद में लोकलज्जा के कारण राजा दुष्यन्त शकुन्तला को अपने महलों में नहीं लाया। ऋषि ने



प्रतीक्षा कर स्वयं अपने शिष्यों के साथ शकुन्तला के हस्तिनापुर भेज दिया। वहाँ राजा ने उसे स्वीकारना तो दूर पहचानने से भी मना कर दिया। तब शकुन्तला स्वयं को एकाकी व असहाय मानकर रोती हुई अपना पक्ष प्रस्तुत करती रही। उस समय महाकवि कालिदास ने अपने नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में कण्व शिष्य शार्ङ्गरव के मुख से बहुत ही महत्वपूर्ण बात बुलवाई है-  
इत्थमात्मकृतं चापलं दहति।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं।

अज्ञात् हृदयेष्वेवं वैरी भवति सौहृदम्॥ ५-२६

“इस प्रकार अपने द्वारा की गई निर्बोध चंचलता जलाया करती है। इसलिए एकान्त मिलन विशेष रूप से परख कर करना चाहिए। अनजाने हृदयों में हुई मैत्री वैरी हो जाती है।”

क्या आज की युवा पीढ़ी इस प्रसंग से कुछ प्रेरणा लेगी? अब दूसरी घटना देखिये - राजा शान्तनु ने युवती गंगा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। गंगा ने इस शर्त पर विवाह स्वीकार कर लिया कि मैं अच्छा- बुरा जो भी करूँ आप मुझे नहीं रोकेंगे नहीं और मेरा परिचय नहीं पूछेंगे। राजा ने बिना विचारे शर्त मान ली। कहानी प्रसिद्ध है कि गंगा ने राजा की कई संतानों को पैदा होते ही गंगा नदी में प्रवाहित कर दिया। राजा बहुत दुःखी हुआ, पर शर्त में बंधा हुआ इस पापकर्म से रानी को रोकने की हिम्मत नहीं कर पाया। आखिर धैर्य का बांध टूट गया और आठवें पुत्र को बहाते समय राजा ने रानी गंगा को रोक लिया। बस, रानी राजा को छोड़कर चली गई।

शायद इतिहास के ये प्रसंग उन उच्छृंखल व कामान्ध युवक-युवतियों की आंखें खोल दें, जो अपनी नीच वासना की पूर्ति में बाधक जानकर अपने परिवार के सदस्यों को ही मार देते हैं। सम्भव है आज के प्रगतिशील युवक-युवतियां महाभारत के प्राचीन इतिहास को काल्पनिक कह दें, अतः उनकी सेवा में नवीन इतिहास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

पाकिस्तान के निर्माता मुहम्मद अली जिन्ना (३६ वर्ष) १९१६ में दार्जिलिंग में अपने पारसी मित्र (मुम्बई के सबसे धनी) सर दिनशॉ के पास ठहरे हुए थे कि उनका दिनशॉ की १६ वर्षीया बेटी रतनबाई (रत्ती) से प्रेम हो गया। यह जानकर दिनशॉ ने रत्ती को जिन्ना से बिल्कुल अलग रखा। १८ वर्ष की होते ही रत्ती ने घर छोड़ दिया और १६ अप्रैल, १९१८ के समाचार- पत्रों में छपा- “सर दिनशॉ पेटिट की एकमात्र पुत्री सुश्री रतनबाई ने कल इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया और आज एम.ए.जिन्ना से उनका विवाह हो गया।”

अगले वर्ष एकमात्र बेटी “दीना” का जन्म हुआ। १९२५ का वर्ष आते- आते जिन्ना और रत्ती में इतना अलगाव हो गया कि रत्ती का अधिकतर समय अपने पालतु कुत्ते-बिल्लियों के साथ ही गुजरता था न कि अपनी बेटी दीना और जिन्ना के साथ। जिन्ना के दुर्व्यवहार के कारण वह शारीरिक ही नहीं, मानसिक रूप से भी परेशान (विक्षिप्त सी) हो गई। मृत्यु (१८ फरवरी १९२९) से पूर्व उसकी यह अवस्था थी कि जिन्ना तो मुंबई में अपने मकान में रह रहा था और रत्ती मुम्बई में ही किराये के मकान में रह रही थी। हाय! किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि मुम्बई के सबसे धनी पिता की इकलौती बेटी की प्रेम-कहानी ही नहीं, जिन्दगी भी इतनी जल्दी समाप्त हो जाएगी।

पुनः भारत-प्रसिद्ध एक धनी परिवार की इकलौती बेटी इन्दिरा ने एक पारसी (या मुस्लिम) युवक फीरोज खान से प्रेम किया। कहते हैं कि स्विटजरलैंड के अस्पताल में मृत्युशय्या पर पड़ी माता कमला नेहरू ( मृत्यु २३ फरवरी १९३६ ई.) इस सम्बन्ध से नाराज थी और पिता श्री जवाहरलाल नेहरू तो बिल्कुल खिलाफ थे। फिर भी इन्दिरा फीरोज खान से शादी के लिए अड़ गई। उन दिनों वे दोनों इंग्लैण्ड में थे। ऐसी भी अफवाह फैली कि १९४१ ई. में वहीं इन्दिरा इस्लाम ग्रहण कर मैमुना बेगम बन गई थी। गांधी जी के बीच-बचाव करने से अगले वर्ष भारत आने पर उनका वैदिक रीति से विवाह

हुआ। पहली संतान (श्री राजीव गांधी) के जन्म के कुछ समय बाद ही इस प्रेम-विवाह में कुछ खटास उत्पन्न होने लगा और दूसरे बेटे (श्री संजय गांधी) के जन्म के कुछ समय बाद तो वे अलग-अलग ही रहने लगे। नेहरू जी फीरोज गांधी को बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। यद्यपि इन्दिरा-फिरोज का तलाक नहीं हुआ था फिर भी श्रीमती इन्दिरा गांधी अपने पिता के पास ही रहती थी। स्वामी विद्यानन्द विदेह जी ने १४ जून १९५८ को लिखा था - “बरसों से नेहरू की युवती सुन्दर पुत्री अपने पति को त्याग कर नेहरू के पास रहती है -----। इन्दिरा का पति फीरोज गांधी बीमार पड़ा होता है और इन्दिरा नेहरू के साथ देश-विदेशों की सैर कर रही होती है अभी पिछले दिनों फीरोज गांधी लखनऊ में बीमार पड़ा हुआ था और इन्दिरा मनाली में नेहरू के साथ अवकाश मना रही थी।” (नेहरू: उत्थान और पतन, पृ. २०८)

और कुछ समय बाद ही (१९६० ई.) फीरोज गांधी की मृत्यु हो गई। राजनीति में कुछ कर गुजरने की दृढ़ इच्छा शक्ति (जिसे नेहरू जी पसन्द नहीं करते थे) रखने वाला नेहरू परिवार का दामाद न केवल इतनी जल्दी चल बसा, अपितु उसी परिवार में उपेक्षित भी हो गया। (यह इतिहास है, इसे राजनीति न माना जाये)।

१०-१२ वर्ष पूर्व हरियाणा की राजनीति में विशेष भूमिका (उप-मुख्यमंत्री की) निभाने वाले ३८ वर्षीय बाल- बच्चेदार श्री चन्द्रमोहन जी अनुराधा बाली नाम की किसी तलाकशुदा वकील औरत (३२ वर्ष) के प्रेम-जाल में ऐसे फंसे कि पद-प्रतिष्ठा, लोक-लाज, खानदान आदि सब भूलकर दूसरा विवाह करने के लिए दोनों मुसलमान बन गये और २ दिसम्बर २००८ को चांद मोहम्मद और फिजा मोहम्मद ने निकाह कर लिया। मीडिया के सामने आकर दोनों ने साथ-साथ जीने-मरने की कसम खाई। उसी दिन इनकी राजनीतिक और सामाजिक मृत्यु हो गई। इन्हें उप-मुख्यमंत्री के पद से हटा दिया गया और परिवार व समाज से लानत मिली। लगभग २ महीने में

ही कसमें मर गईं और २६ जनवरी २००९ को चांद फिजा को छोड़कर चला गया। समाज की लानतों से शर्मिन्दा होकर चांद मोहम्मद २८ जुलाई ०९ को पुनः हिन्दू बन गया। फिजा पुनः अकेली हो गई। जिसके लिए धर्म ईमान खोया, वह चांद भी उसका नहीं रहा। इससे वह मानसिक रोगी हो गई। ६ अगस्त २०१२ के समाचारपत्रों में छपा कि फिजा के कमरे से उसका सड़ा हुआ शव मिला है। कसमें खाने वाले न साथ जीये और न साथ मरे।

हाय! जिस धर्म के लिए कभी हकीकत राय, गुरु गोविन्द सिंह के पुत्र जोरावर सिंह फतेसिंह, वीरसिंह बुन्देला के पौत्र (जुझार सिंह के पुत्र) उदयभानु-श्यामदेव जैसे बालकों ने और गुरु तेगबहादुर, गोकुला, बंदा वैरागी, शम्भाजी जैसे बलिदानियों ने अपने सिर कटवा दिये थे। उसी धर्म को आज हम कामवासना के गुलाम बनकर छोड़ रहे हैं। अपने पूर्वजों के चरित्र हमने अतिशयोक्ति कहकर सुनने छोड़ दिये, जो हमें संयम और सदाचार सिखाते। कहते हैं कि जालौर (राजस्थान) के कान्हडदेव के पुत्र वीरम जब अलाउद्दीन खिलजी के दरबार (सेवा) में थे, तो हरम की कोई राजकुमारी उससे प्रेम करने लगी। पहले तो हरम की औरतों और सुल्तान ने राजकुमारी फिरोजा को अपना विचार बदलने के लिए डराया-धमकाया, पर जब वह नहीं मानी, तो वीरम को विवाह के लिए कहा गया। संयमी व विवेकी युवक ने यह कहते हुए दरबार छोड़ दिया-

जैसल घर भाटी लजै, कुल लाजै चौहाण।

हूं किम परणु तुरकड़ी, पछम न उगै भाण॥

“मामा जैसलमेर के भाटी और मेरा कुल चौहाण दोनों लज्जित होंगे। मैं एक मुस्लिम लडकी से विवाह उसी प्रकार नहीं कर सकता, जिस प्रकार सूर्य पश्चिम से नहीं उग सकता।”

हो सकता है, आज के विचारक इस घटना को राजनैतिक मूढ़ता (अदूरदर्शिता) कहें, और अगली घटना (काव्य सौन्दर्य) को असम्भव कहें। पर यह सत्य है कि

उन योद्धाओं के चरित्र से केवल पत्नी पाने के लिए मर्यादाहीन बने कामान्ध कुछ शिक्षा ले सकते हैं। कवियों ने वर्णन किया है कि अलाउद्दीन खिलजी के जालौर पर आक्रमण के समय वीरम वीरगति को प्राप्त हो गया, तो उसके कटे सिर को राजकुमारी के पास ले जाया गया। जब राजकुमारी वरमाला डालने लगी, तो मस्तक विपरीत दिशा में घूम गया।

ऐसे चरित्रवान हिन्दुओं की संतान आज खान फिल्म कलाकारों की दीवानी हो रही है। तभी तो इलाहाबाद न्यायालय ने (२०१२ ई.) टिप्पणी की थी कि न्यायालय में एक वर्ष में पांच हजार से अधिक प्रेम-विवाह हुए, परन्तु सब में आश्चर्यजनक रूप से लड़के मुस्लिम थे और लड़कियां हिन्दू थीं। कालेजों में पढ़ने वाली बहुत सी लड़कियां 'लव जिहाद' के चक्कर में फंसकर पहले तो 'लव मैरिज' कर लेती हैं, पर बाद में उनका निकाह होता है, उन्हें लगता है कि वे दही के धोखे में कपास खा गईं। स्वच्छन्दता से किया गया विवाह लड़की को कहीं का नहीं छोड़ता। क्योंकि पति-पत्नी में थोड़ा सा भी मन-मुटाव न हो, यह आज के युग में तो सम्भव नहीं लगता। फिर मां-बाप की उपेक्षा कर प्रेम-विवाह (कोर्ट में) करने वाली लड़कियों की तरफदारी कौन करेगा? ठीक है कि विवाह लड़के-लड़की की पसन्द के अनुसार होना चाहिए। पर उस पसन्द में माता-पिता आदि सम्बन्धियों को भी शामिल करना चाहिए क्योंकि विवाह के लिए केवल बाहरी सौन्दर्य ही नहीं देखा जाता, घरबार और व्यवहार भी देखा जाता है। माता-पिता को भी लड़के-लड़की की पसन्द का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि साथ तो उन्हीं को रहना है। हम सबके मार्गदर्शन के लिए इतिहास का यह प्रसंग प्रस्तुत है-

किशनगढ़ का राजा रूपसिंह शाहजहां की सेवा में रहकर अनेक युद्धों में भाग लेता रहा। जून १६५८ ई. में सामूगढ़ के उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध में दारा की ओर से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हो गया। तब उसका तीन वर्ष का पुत्र मानसिंह गद्दी पर बैठा। औरंगजेब

ने मानसिंह की बहन चारूमति की सुन्दरता के विषय में सुना, तो उसने चारूमति से शादी करने का पैगाम किशनगढ़ भेज दिया। किशनगढ़ वाले विरोध करने की स्थिति में नहीं थे। वैसे भी उनके सामने मुगलों का विनाशकारी इतिहास था। अकबर ने अपने अधीनस्थ बूंदी के राव भोज पर दबाव डाला कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करे। इस पर राव भोज ने बिना सगाई किये ही कह दिया कि उसकी सगाई तो कल्ला राठौर से हो चुकी है और कल्ला राठौड़ ने भी हां भर दी। अकबर ने कल्ला से वह सगाई छोड़ने के लिए कहा, परन्तु कल्ला ने स्पष्ट मना कर दिया और तुरन्त जाकर हिन्दुत्व की रक्षा के लिए राव भोज की कन्या से विवाह कर लिया। इससे अकबर बहुत नाराज हुआ और उसने शाहबाज खां शिवाडे के दुर्ग पर चढाई करने भेजा, जहां कल्ला राठौड़ वीरतापूर्वक लड़कर काम आया।

जहांगीर ने मानसिंह पर दबाव डाला कि वह अपनी पोती ( जगतसिंह की पुत्री) का विवाह उसके साथ करे, तो राव भोज ने अपनी दोहिती देने से स्पष्ट मना कर दिया। इस पर जहांगीर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने काबुल से आगरा आने के बाद राव भोज की इस अवज्ञा का दण्ड देने को कहा परन्तु तब तक राव भोज की मृत्यु (१६०७ ई.) हो चुकी थी। बाद में मानसिंह की पोती उसी जहांगीर को ब्याही गयी, जिससे उसकी बहन ब्याही गयी थी। अतः मजबूर होकर किशनगढ़ वालों को औरंगजेब का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। पर चारूमति को एक विधर्मी मुसलमान के साथ विवाह करना बिल्कुल मंजूर नहीं था, चाहे वह दिल्ली का सम्राट औरंगजेब ही क्यों न हो। उसने अपने परिवार वालों से कहा कि मैं औरंगजेब से शादी नहीं करूंगी। यदि मेरे साथ जबरदस्ती की गई, तो मैं प्राण त्याग दूंगी।

किशनगढ़ (रूपनगर) का राजपरिवार चारूमति के इस निर्णय को सुनकर कांप गया। इस असहाय स्थिति में चारूमति ने मेवाड़ के महाराणा राजसिंह को पुकारा।

उन्हें अपना पति मानकर पत्र लिखा। पत्र पाकर राणा राजसिंह इसके परिणाम को जानते हुए भी हिंदुत्व (चारुमति) की रक्षा के लिए चल पड़े। उधर औरंगजेब ने चारुमति को अपने अंतःपुर में प्रविष्ट करवाने हेतु अहदि और नाजिर लोगों को ससैन्य किशनगढ़ के लिए रवाना किया। इस मुगल सैन्य दल से मुकाबला करने के लिए चूण्डावत (चूडावत) सरदार रावत रतनसिंह के नेतृत्व में मेवाड़ का सैन्य दल चला।

अभी-अभी विवाहित हुए इस युवा वीर की वीरांगना हाड़ी रानी अंदर (इंदर) कंवर ने प्रेमभाव के कारण पति में जगी उलझन को भगाने के लिए प्रेम-निशानी के रूप में अपना सिर काटकर भेजा था, जिसे गले में बांधकर चूण्डावत भूखे शेर की भांति शत्रु पर टूट पड़ा और मुगल सेना पर विजय पाई, पर अधिक घयल होने के कारण स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हो गया।

उधर किशनगढ़ पहुंचकर महाराणा राजसिंह के दल ने राजा व राजपरिवार को दिखावे के तौर पर कैद कर लिया और राठौड़ राजकुमारी चारुमती से विधिवत् विवाह कर महाराणा उदयपुर आ गये। औरंगजेब का सपना चूर-चूर हो गया। वह विष का घूंट पीकर रह गया। एक असहाय देवी में धर्मरक्षा की भावना जगी, तो दूसरी देवी ने उसकी सहायता के लिए अपना सर्वस्व लुटा दिया।

**तेरे अहसान को मेरे चूंडावत, न देश युगों तक भूलेगा,**

पृष्ठ ३ का शेष  
पवित्रताकारक वेद-विज्ञान-कर्म से **(शतधारेण)** बहुत विद्याओं के धारक परमेश्वर वा वेद से **(सुप्वा)** अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले वा पवित्रता के हेतु यज्ञ से हमें **(पुनातु)** पवित्र कीजिये।

हे विद्वान् अथवा जिज्ञासु मनुष्य! तू **(काम्)** कौन-कौन सी वाणी को **(अधुक्षः)** दुहना चाहता है? ॥१॥३॥

**भावार्थः** ये मनुष्याः पूर्वोक्तं यज्ञमनुष्ठाय पवित्रा भवन्ति, तान् जगदीश्वरो बहुविधेन विज्ञानेन सह वर्तमानान्

**तेरी वीरता की लोरियों में हाड़ी, मेरे देश का बचपन झूलेगा।**

**तुम्हारे दिव्य बलिदान को, युगों-युगों तक गायेगा देश,**

**श्रद्धा के ले फूल हृदय में, नमन तुम्हें करता 'राजेश' ।।**

चारुमति के इतिहास को दोहराया डबरपुर (हरियाणा) की समाकौर ने। इलाके की नवविवाहिता को अपनी पहली रात नवाब कलानौर के घर बितानी पड़ती थी। जाट परिवार में पैदा हुई समाकौर का विवाह डीघल (झज्जर) गांव के युवक के साथ हुआ, तो इस वीरांगना ने इस नीचप्रथा का पालन करने से मना कर दिया और यह कहकर अपने घर चली गई कि मैं जाटों के यहां ब्याही हूं, मुसलमानों के यहां नहीं। जो जाट अपनी बहु-बेटी की रक्षा नहीं कर सकते, मैं ऐसे कायरों के यहां नहीं रहूंगी। बेटी ने पिता के स्वाभिमान को जगा दिया। उसने अत्याचारी नवाब के पापों का घड़ा फोड़ने के लिए गांव के लोगों को इकट्ठा कर नवाब पर चढाई कर दी। डीघल वाले भी साथ मिल गये। एक वीरांगना देवी के साहस से दुराचारी प्रथा का अन्त हो गया। यदि हमारे इतिहास में ऐसी वीरांगनाओं की बलिदानी गाथा शामिल हो जाए और सिनेमा वाले ऐसे नाटक व फिल्म बनाएं, तो सम्भव है कि भ्रमित युवा पीढ़ी को सन्मार्ग मिल जाए।

□□

कृत्वैतेभ्यो बहुविधं सुखं ददाति। परन्तु-ये क्रियावन्तः परोपकारिणः सन्ति ते सुखमाप्नुवन्ति, नेतरेऽलसाः।

**भावार्थः** जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करके पवित्र होते हैं, उनको परमेश्वर बहुत प्रकार के विज्ञान से युक्त करके उन्हें अनेक प्रकार का सुख प्रदान करता है। परन्तु- जो कर्मशील परोपकारी हैं, वही सुख को प्राप्त करते हैं; दूसरे आलसी लोग नहीं।

□□

## सबका आदि मूल - परमेश्वर

(आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक, वैदिक वैज्ञानिक, मो०:-०६४१४१८२१७३,०६८२६१४८४००)

इस सृष्टि में जो भी ज्ञेय पदार्थ व उसके जानने का साधन ज्ञान है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई, यह प्रश्न सृष्टि के आदिकाल से ही मानव के मस्तिष्क में उत्पन्न होता रहा है। संसार के सभी ईश्वरवादी संप्रदाय निश्चित रूप से यह मानते हैं कि इन दोनों का आदिमूल परमात्मा है। वेद, प्रचलित पुराण, कुरान, बाईबल आदि सभी ग्रंथ इस बात पर एकमत हैं, भले ही ईश्वर के स्वरूप के विषय में मतभिन्नता है। इसी एक सत्य को प्रतिपादित करते हुए आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रथम नियम में लिखा-

“सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाना जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।”

महर्षि का यह वाक्य अत्यन्त सारगर्भित एवं स्पष्ट है, पुनरपि कुछ लोग इस वाक्य को समझने में भूल करते हैं। एक ऐसे ही निष्णात विद्वान ने अपने द्वारा सम्पादित मासिक पत्र के संपादकीय में इसे ...“सत्य, विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं...” लिखकर विद्या तथा पदार्थ विद्या, ये दो प्रकार की विद्यायें बताई हैं। तथा इन दोनों को सभी सत्य ज्ञान का साधन बताया है। इन लोगों की समझ में यह बात नहीं आयी कि ‘पदार्थ’ से पूर्व ‘जो’ सर्वनाम किस संज्ञा से संबंधित है? ये सत्य को जानने का साधन इन विद्याओं को बता रहे हैं, तब ‘जो’ सर्वनाम सत्य के साथ प्रयुक्त होगा। तब वाक्य इस प्रकार होगा---‘सब सत्य जो विद्या और पदार्थविद्या से जाने जाते हैं---’महर्षि ने ‘सत्यविद्या’ जो समस्त पद के रूप में प्रयुक्त किया है, उसका यहाँ कोई अर्थ ही नहीं रहेगा, जबकि ‘सत्य’ व ‘विद्या’ पदों के मध्य ‘जो’ आने पर महर्षि के वाक्य का स्वरूप ही बदल जायेगा। क्या किसी को भी यह अधिकार है कि वह महर्षि के वाक्य को ही बदलने की मनमानी करे। महर्षि के वाक्य का

अर्थ न जान सके, तो वाक्य ही बदल दिया।

उधर कोई महानुभाव यहां सत्यविद्या को एक पद तथा पदार्थविद्या को अन्य एक पद मानकर सत्यविद्या व पदार्थविद्या इन दो प्रकार की विद्याओं का मूल परमेश्वर को मानते हैं। इन महानुभावों ने भी वाक्य को समझने में भूल की है। इन्होंने ‘जो’ सर्वनाम पर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार की मिथ्या व्याख्या भी मैंने एक आर्य पत्रिका में देखी है। मैं ऐसे विद्वान लेखकों के भ्रम को दूर करते हुए भी उनके सम्मान की रक्षा हेतु उनका नामोल्लेख करना उचित नहीं समझता।

इन भ्रान्त धारणाओं की चर्चा के उपरांत हम महर्षि के वाक्य को यथावत् विचारने का प्रयास करते हैं-

“सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।” यहाँ स्पष्ट ही ‘सत्य’ पद ‘विद्या’ के साथ विशेषण के रूप में जुड़ा हुआ है। और ‘पदार्थ’ विद्या पद से पृथक पद है। ‘जो’ सर्वनाम ‘पदार्थ’ संज्ञा के साथ संगत है। इस द्वितीय ‘विद्या’ पद के साथ सत्य विशेषण नहीं है परन्तु यहां लुप्त रूप में इसके साथ जुड़ा अवश्य है अर्थात् यह ‘विद्या’ पद पूर्व में आये ‘सत्यविद्या’ के लिए ही प्रयुक्त है। यहाँ संपूर्ण वाक्य का अर्थ है कि संपूर्ण सत्यविद्या एवं जो पदार्थ उस सत्यविद्या से जाने जाते हैं, का आदिमूल परमेश्वर है। यहाँ ‘सत्यविद्या’ पद वेद की ओर संकेत कर रहा है, जैसा कि आर्यसमाज के तृतीय नियम में वर्णित है। इसके साथ ही ‘पदार्थ’ पद इस संपूर्ण सृष्टि के पदार्थों अर्थात् ईश्वर, जीव व प्रकृति के विकार रूप में उत्पन्न सभी जड़ पदार्थों की ओर संकेत कर रहा है। ये सभी पदार्थ जिस वेदविद्या से जाने जाते हैं, वही सत्यविद्या है। इस प्रकार इस सृष्टि के सभी जड़ व चेतन पदार्थ तथा उनको जानने का साधन सत्यविद्या दोनों की उत्पत्ति का मूल निमित्त कारण परमात्मा है। यहाँ कोई

यह शंका करे कि 'पदार्थ' पद के पश्चात् आये 'विद्या' के साथ 'सत्य' पद क्यों नहीं? इसके उत्तर में मैं कहना चाहूँगा कि यह कोई दोष नहीं है। ऋषि अपनी बात सूत्ररूप में ही कहते हैं। अनावश्यक विस्तार देना उनका स्वभाव नहीं होता। सभी आर्षग्रंथ इसी शैली के प्रतिपादक हैं। वैसे भी यदि मैं कहूँ, "कि यह काला घोड़ा और जो व्यक्ति घोड़े पर बैठा है, का निवास वह गांव है," तब क्या यह अर्थ नहीं निकल सकता कि वह काला घोड़ा तथा जो व्यक्ति घोड़े पर बैठा है, उस गांव के रहने वाले हैं। अवश्य ही यहाँ यही अर्थ है। इसी प्रकार की शैली में आर्यसमाज का प्रथम नियम लिखा गया है।

अब यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि महर्षि पतंजलि ने योगसूत्रों में पदार्थ के स्वरूप के यथार्थ ज्ञान को ही विद्या कहा है,, जैसे सत्य को सत्य, आत्मा तथा सुख को सुख आदि मानना व जानना ही विद्या कहाती है। तब विद्या के लिए 'सत्य' विशेषण का प्रयोग क्यों? क्या विद्या कभी असत्य भी हो सकती है? इस विषय में

पृष्ठ ११ का शेष  
महापुरुषों और ऋषियों मुनियों का नाम लेने वाला दुनिया में नजर नहीं आता। वास्तव में उन जैसा त्यागी-तपस्वी, वीर, साहसी, ईश्वर विश्वासी, वेदों का विद्वान महाभारत काल के बाद कोई दूसरा व्यक्ति इस संसार में नहीं हुआ। वे वस्तुतः सच्चे युगनायक सन्यासी थे। उनका ऋण हम कभी नहीं चुका सकते।

इस समय संसार में हजारों व्यक्ति वेद के विरुद्ध मत-मतांतर चलाकर, ईश्वर की पूजा छुड़वाकर गुरुडम एवं पाखण्ड फैला रहे हैं। जिनमें से सैकड़ों पाखण्डी जेलों में बन्द हैं। इस समय चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार बढ रहे हैं। जिससे सारा संसार दुःखी है। अगर महर्षि दयानन्द को यह ज्ञात होता कि हम इतने स्वार्थी प्रमादी लोभी बन जायेंगे, तो वे कदापि विषपान नहीं करते। पं. लेखराम ने कहा था-लेखनी का कार्य और शास्त्रार्थ बंद नहीं होने चाहिए। आप ठण्डे दिल से विचार करें कि क्या हम उनकी बात मान रहे हैं? जो अपने आगे किसी को भी कुछ नहीं समझते। याद रखो यह धन यहीं पड़ा रह जाएगा। इस संसार में जो व्यक्ति निःस्वार्थ भावना से परोपकार एवं संसार की भलाई

मेरा मानना है कि महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में 'सत्' का अर्थ नित्य किया है। इस कारण यहाँ 'सत्य' पद को नित्य का पर्यायवाची मानना चाहिए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सभी प्रकार का नित्य ज्ञान और उस नित्य ज्ञान से जो पदार्थ जाने जाते हैं अथवा जाने जा सकते हैं, उन दोनों ही का आदिमूल परमात्मा है। यह नित्य ज्ञान वेद है और वेद से जानी जाने वाली संपूर्ण सृष्टि, इन दोनों का कर्ता परमात्मा है। यहाँ अनित्य विद्या का कर्ता परमात्मा नहीं है। इसका अर्थ यह है कि वेद में अनित्य इतिहास आदि विद्यायें नहीं हैं, भले ही वे विद्यायें यथार्थ हों।

किसी राजा, रानी, ऋषि, मुनि का इतिहास, पर्वत, देश, आदि के नाम अनित्य इतिहास के भाग हैं, इनका वर्णन वेदों में नहीं हो सकता। इसे इसी संदर्भ में ग्रहण करना चाहिए न कि नाना भ्रांतियों में फंसकर अपना समय व्यर्थ करना चाहिए।

□□

के काम करते हैं यह संसार उन्हीं की महिमा के गीत गाता है। अगर आप भी महान् बनना चाहते हैं और महर्षि दयानन्द महाराज के सच्चे शिष्य बनने का दम भरते हैं तो वेद प्रचार के लिए अच्छी तरह कमर कसकर कर्म क्षेत्र में कूद पड़ो।

अन्त में :-

**“आर्य कुमारो! अब तो जागो, आगे कदम बढ़ाओ तुम।**

**कहने का अब समय नहीं है, करके काम दिखाओ तुम।।**

**देश, धर्म के काम जो आए, उसे जवानी कहते हैं।**

**सारा जग खुश होकर गाए, उसे कहानी कहते हैं।।**

**जगत् गुरु ऋषि दयानन्द के, सपनों को साकार करो।**

**करो परस्पर प्रेम सज्जनो, वेदों का प्रचार करो।।**

**स्वामी श्रद्धानन्द बनो तुम, जग में नाम कमाओ तुम।।**

**लेखराम, गुरुदत्त बनो तुम, वैदिक नाद बजाओ तुम।**

**अगर नहीं जागोगे मित्रो, भारी दुःख उठाओगे।**

**हंसी उडाएगी फिर दुनियां, अज्ञानी कहलाओगे।।”**

□□

## दिव्य मातृत्व से ही दिव्य संतान निर्माण संभव

(डॉ० अर्चना प्रिय आर्य, पथुरा, मो०-०६७९६६९०५५७, ०६७९६६०९०८८)

पुत्र का निर्माण करने के कारण ही नारी की संज्ञा माता है। जननी तो हर स्त्री होती है परन्तु मां के विषय में कहा जाता है 'जो करे पुत्र निर्माण माता सोई' और इसीलिए महर्षि मनु ने मां को दस सहस्र आचार्यों के समान कहा है-

**उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।**

**सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते ।।**

मां सन्तान के नाम पर कूड़ा, कचरा पैदा कर धरती मां का बोझ नहीं बढ़ाती थी, बल्कि ऐसी चरित्रवान, जितेन्द्रिय, वीर बहादुर व शक्तिशाली सन्तान का निर्माण करती थी, जो भारत मां के दर्द को दूर करने वाली होती थी। क्योंकि वेदों ने कहा है- **'वीरभोग्या वसुन्धरा'** अर्थात् ये भूमि वीरों के लिए है, कायर व कमजोर लोगों के लिए नहीं है। यही कारण था कि पहले यदि नारी अपने को निर्दोष प्रस्तुत करती थी, तो इस बात की शपथ लेती थी। कहते हैं कि सप्तमहर्षि माता अरुन्धती सहित यात्रा कर रहे थे। मार्ग में किसी वस्तु की चोरी हो गई। प्रत्येक अपनी सफाई देने लगा। माता अरुन्धती कहती हैं 'जो पाप अयोग्य और दुर्बल सन्तान उत्पन्न करने का होता है, वह पाप मुझे लगे, यदि मैंने चोरी की हो।' यहां स्पष्ट है कि प्राचीन मातायें आयोग्य और दुर्बल संतान पैदा करना महापाप समझती थीं।

योगीराज श्रीकृष्ण की वीरता, शौर्य, राजनीतिकता, प्रभुभक्ति, गोमाता प्रेम, सेवा भाव और धर्मशीलता से आप परिचित हैं, परन्तु इसका मूल भी आपको माता देवकी के अनुपम धैर्य, कष्ट, सहिष्णुता, रूप, तप, वीरता, ईश्वर प्रेम और माता यशोदा की लोरियां में देखना होगा। छत्रपति शिवाजी को सिंहगढ़ विजय की प्रेरणा करने वाली माता जीजाबाई थी। **"सिंहगढ़ विजय करो बेटा भगवा ध्वज चलकर फैराओ।"** भक्त ध्रुव का निर्माण करने वाली माता सुनीति थी। हनुमान का निर्माण अंजना ने किया, भीष्म पितामाह की व्रतनिष्ठा का मूल उनकी

माता गंगा की व्रतसाधना में छिपा है। आल्हा-ऊदल की वीरता का रहस्य माता देवलीदेवी की शिक्षायें हैं। गोरा-बादल की प्राण संचारी शक्ति माता जवाहरबाई और हताश पुत्र संजय को धिक्कारते हुए पुनः कर्तव्यपथ पर आरूढ करने वाली वीर माता मदालसा के उदाहरण में सर्वाधिक स्पष्ट हुआ है। वे अपने तीनों पुत्रों विब्रकन्त, सुबाहु एवं शत्रुमर्दन को शुद्धोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि का उपदेश करके विरक्त बना देती है। चौथे पुत्र अलर्क को भी जब यही उपदेश करने लगी, तो राजा चिन्तित हो उठते हैं और कहते हैं- 'देवि! इसे भी विरक्त बनाकर मेरी वंश परम्परा उच्छेद करने पर क्यों तुली हो? इसे प्रवृत्ति मार्ग में लगाओ और उसके अनुकूल ही उपदेश दो। मदालसा ने पति की आज्ञा मान ली और अलर्क को बचपन में ही व्यवहार-शास्त्र का पण्डित बना दिया। उसे राजनीति का पूर्ण ज्ञान कराया। धर्म, अर्थ और काम तीनों के शास्त्रों में वह प्रवीण बन गया। बड़े होने पर माता-पिता ने अलर्क को राजगद्दी पर बिठाया और स्वयं वन में तपस्या करने के लिए चले गये। किसी कवि की पंक्तियां प्रसंगवश पठनीय हैं-

**माता के सिखाये पुत्र कायर और क्रूर होत ।**

**माता के सिखाये पुत्र दाता और शूर हैं ।।**

**माता के सिखाये पुत्र ब्रह्मचारी बलवान होत ।**

**माता के सिखाये पुत्र जग में मशहूर हैं ।।**

हमारी मातायें, बहिनें, आज भी महर्षि दयानन्द, सुभाष चन्द्र बोस, सरदार वल्लभभाई पटेल, सरदार भगत सिंह, लाल बहादुर शास्त्री सरीखे लालों को जन्म देकर वे अपने महान राष्ट्र को फिर जगद्गुरु बनाने में योगदान दे सकती हैं। इसके लिए उन्हें 'सन्तति निर्माण शास्त्र' का अध्ययन करना होगा। गर्भाधान से लेकर उपनयन संस्कार तक इसी विज्ञान का शिक्षण है। मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों में भी इसके लिए आवश्यक विधान हैं। गर्भाधान प्रक्रिया के पीछे एक स्वस्थ कल्पना और उत्कृष्ट भावना, रहन-सहन

किस प्रकार के चित्रों का अवलोकन किस प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन, बालक को किस-किस प्रकार की लोरियां, रहन-सहन आदि किस प्रकार की कहानियां, कवितायें, गीत कण्ठस्थ करना, कैसी स्त्रियों का साथ आदि किस प्रकार का शिष्टाचार जो सन्तति निर्माण विज्ञान के अनेक विभाग हैं।

खेत में उत्तम फसल प्राप्त करने के लिए बीज डालने के पूर्व खेत को तैयार करना होता है। मां ही वह खेत है। “माता निर्माता भवति” मां ही निमात्री शक्ति है। मातायें ही किसी राष्ट्र और जन-जीवन की आधारशिला हैं परन्तु अपनी मनोभूमि को ऐसा बनाने के लिए, मानव जीवन के महत्व, ईश्वर भक्ति और मातृभूमि भक्ति के रहस्य को जानने के साथ ही इस युग के महिमामय क्रान्तिदर्शी ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित सोलह संस्कारों की वैदिक विधि महत्व और प्रक्रिया को समझना आवश्यक होगा। रामप्रसाद बिस्मिल की मां ने बचपन से ही अपने बच्चे को स्वामी दयानन्द का यह सन्देश “गन्दे से गन्दा स्वदेशी राज्य, अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है” सुनाकर फांसी की रस्सी को चूमने की प्रेरणा दी थी। आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है मानवता से युक्त सच्चे मानव का अकाल। आज यह समझना है कि आदर्श मानवों के इस अकाल को पुरुष नहीं स्त्रियाँ ही दूर कर सकती हैं क्योंकि स्त्री का वास्तविक स्वरूप माता का है और ‘माता निर्माता भवति’ माता ही राष्ट्र और जीवन की निर्मात्री शक्ति है। **‘मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।’** शतपथ ब्राह्मण का यह वचन है। जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान बनता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखा है कि वह सन्तान बड़ी भग्यवान है, जिसके माता-पिता धार्मिक, विद्वान हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है, उतना किसी से नहीं। जितना माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता। इसलिए “प्रशस्ता धार्मिकी माता यस्य स मातृवान्” धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान सं लेकर जब तक

शिक्षा पूरी न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर की जेल में ब्रिटिश राज्य को उखाड़ने के प्रयत्न में फांसी की सजा दी जा चुकी थी। भारत के गवर्नर जनरल ने क्षमा मांग लेने और भविष्य में वैसा न करने का आश्वासन देने पर फांसी से छुटकारा देने का आश्वासन दे दिया। रामप्रसाद बिस्मिल की फांसी से एक दिन पूर्व उनके पिता उससे मिलने आये और उन्होंने पुत्र-प्रेम से विह्वल हो उसे क्षमा मांगने और भविष्य में स्वतन्त्रता के संग्राम में न कूदने की मार्मिक अपील की। पाठको! लेकिन एक आर्यवीर को मृत्यु भयभीत नहीं कर सकती थी। स्वामी दयानन्द के अनुयायी इस बिस्मिल के लिए मृत्यु कोई भयवाली वस्तु नहीं थी। मृत्यु का अर्थ उसकी दृष्टि में था मां की गोद में से जाना। छोटा बच्चा दिन भर खिलखिलाता है, हंसता है, रोता है, गिरता है और रात्रि होते ही मां उसे उठा लेती है। यही हाल जीव का है। संसार से जीव को मृत्यु माता उठा लेती है। मृत्यु मानो महामाया है, महाप्रस्थान है, मृत्यु मानो पर्व है, मृत्यु मानो प्रियतम के पास जाना है। तब भला यह मृत्यु रामप्रसाद बिस्मिल को कैसे भयभीत कर सकती थी। उसने पिता की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। कुछ समय पश्चात् उसकी मां पहुंची। मां के पहुंचते ही बिस्मिल ने रोना शुरू कर दिया। मां के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मां ने बेटे को फटकारते हुए कहा कि जब मरने से इतना ही डर लगता था, तो इस मार्ग को क्यों चुना? मां के इन वचनों को सुनकर वो बिस्मिल अपनी आंखों से आंसू पोंछते हुये बोला, “मां! मैं मृत्यु से डरकर नहीं रो रहा हूं। मौत का मुझे कोई गम नहीं है परन्तु मैं तो इसलिए रो रहा हूं कि मरने के बाद मुझे तुझ जैसी बहादुर मां की गोद कहां मिलेगी?”

वास्तव में माताओं ने अपने हृदयों के तीव्र वेगों से जो चमत्कार किये हैं, उनके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। माता कौशल्या, माता अंजना, माता मदालसा, माता देवकी, माता यशोदा, जीजाबाई आदि के शत सहस्र उदाहरण हैं। जिन्होंने सन्तान निर्माण का आदर्श प्रस्तुत कर धन्यता और अमरता प्राप्त की है।



**नारी नर का निर्माण करे।**

**मनु, व्यास, कृष्ण, राम जैसे पुत्रों को जने।**

**नारी गुण का आधान करे, प्रताप, शिवा, गोविन्द बने।**

महाभारत का उदाहरण हमारे सामने है। वीर अभिमन्यु की मां सुभद्रा अपने पति अर्जुन से चक्रव्यूह भेदन का ज्ञान प्राप्त करते-करते सो गई। परिणामतः बालक अभिमन्यु का शिक्षण अधूरा रहा और वह चक्रव्यूह से बाहर निकल सकने के कारण पराजित हुआ। इतिहास साक्षी है कि शिवाजी महाराज को राजमाता जीजाबाई ने गर्भकाल से ही शिक्षण दिया था। उनका उद्देश्य था कि वह बालक गो-ब्रह्मण प्रतिपालक एवं हिन्दू राष्ट्र का पुनरूत्थान करने वाला बने। इसलिए उन्होंने बालक शिवाजी के चरित्र का निर्माण करने वाला संस्कारप्रद वातावरण गर्भकाल से ही उपलब्ध कराया। संत ज्ञानेश्वर की मां ने भी अनेक कष्ट सहकर राष्ट्रीय स्वाभिमान का एवं भक्ति से परिपूर्ण बालक का निर्माण किया और समाज हिताय समर्पित कर दिया। **‘चिन्ता करितो विश्वाची’** यह वाक्य कहने वाले बालक नारायण की मां सूर्य की उपासना करती थी। सूर्योपासक माता राणुबाई ने सूर्यसम दिव्य, तेजस्वी, विश्व की चिन्ता करने वाले सुपुत्र को जन्म दिया। यही बालक स्वामी रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कहने का तात्पर्य है कि ऐसे अनेक उदाहरण हमारे इतिहास के पृष्ठों में छिपे हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि माता के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बालक का वैसा ही निर्माण हुआ, जैसा वह चाहती थी।

मां मार्गदर्शक होती है। वह जैसा चित्र बालक के मानस पर अंकित करती है, बालक वैसा ही बनता है। एक बार बातों-बातों में बालक नरेन्द्र ने कह दिया कि मैं तो कोचवान बनूंगा। ममतामयी मां ने तुरन्त स्थिति को संभालकर कहा ठीक है तुम कोचवान ही बनना परन्तु श्रीकृष्ण जैसे। इतना कहकर उन्होंने अर्जुन का रथ हांकते हुए श्रीकृष्ण का चित्र दिखाया। हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द के रूप में जाना जाने वाला यह बालक हिन्दू तत्व चिन्तन का सारथी बना और उसकी गूँज को विश्व

गगन में फैला दिया।

हर महान व्यक्तित्व के पीछे एक मां छिपी है और छिपा है उसका ममत्व। श्रेष्ठ सन्तति के निर्माण हेतु माता का संस्कारित होना देश की आवश्यकता है इसलिए आज बालिकाओं की शिक्षा इस प्रकार की हो यह विचार होना चाहिए। उसके मन में स्त्रीत्व के प्रति हीन भावना न हो। उसे अपने नारी होने पर गर्व हो तथा वह स्वयं कन्या के प्रति जाग्रत हुई अनावस्था को दूर कर उसमें भावी माता के संस्कारों को भरने के प्रति सजग बने।

आज की माताओं को विचारना है कि उसे कैसा साहित्य पढ़ना होगा, घर का वातावरण कैसा हो। उसके मन हृदय में वर्तमान परिस्थिति के अनुसार भव्य दिव्य राष्ट्र की परिकल्पना एवं भक्ति कैसे जागृत हो? तभी वह भावी नागरिक को धर्मभिमुख कर्तव्य- तत्पर एवं राष्ट्र के प्रति सजग बना सकती है। खाओ, पीओ, मस्त रहो। यह अपने देश की संस्कृति में नहीं है। अपनी संस्कृति में पर के लिए अर्थात् समाज, राष्ट्र, परिवार के लिए जीने की अवधारणा है। मातृत्व का यह रूप केवल आज श्रंगार भोग-विलास के मार्ग से प्राप्त हुआ जीवन का प्रसंग नहीं है, अपितु समझ-बूझकर स्वयं स्वीकारा हुआ एक महान पवित्रतम क्षण है। यह सच है कि कौशल्या केवल रानी होती और भोग-विलास में मस्त रहकर संतान को जन्म देती, तो संतान राम न बनकर कुछ और होती। श्रीराम माता कौशल्या के संस्कारों का प्रतिफल है। हमारे देश की माताओं को भोगवादी संस्कृति से दूर रहना होगा। एक रोटी को बांटकर खाने की प्रेरणा मां ही अन्तःकरण में जाग्रत करती है। जब यहाँ के नागरिक भोगवाद से दूर रहकर, आर्य तत्वज्ञान को जीवन में उतार कर, स्वार्थ विहीन, भ्रष्टाचारमुक्त, दिव्य, तेजस्वी राष्ट्र के निर्माण में क्षमतावान बनेंगे, तो देश समुन्नत होगा। यही दिव्यभाव मां के हृदय में चाहिए। दिव्य मातृत्व, दिव्य नागरिक निर्माण करेगा और दिव्य नागरिक निर्माण करेंगे समुन्नत राष्ट्र।

**देवियाँ देश की जाग जाये अगर।**

**युग स्वयं ही बदलता चला जायेगा।।**



**परम आस्तिक एवं सत्योपासक महर्षि दयानन्द ने परम नास्तिक चार्वाक मत की सत्य बातों को स्वीकार कर आर्यत्व का परिचय दिया।  
(भावेश मेरजा, भरुच, मो०-०६, ८७६५२८२४७)**

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती परम आस्तिक थे। वे वेदों को ईश्वर प्रणीत मानते थे। ईश्वर, वेद, कर्मफल, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि को वे मानते थे। उन्होंने आर्य समाज का गठन आस्तिकवाद की ही बुनियाद पर किया था। आर्यसमाज के प्रथम तीन नियमों से यह बात भली-भांति सिद्ध होती है। महर्षि नास्तिकता के निवारण एवं आस्तिकता के प्रतिपादन के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। उनके प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का अधिकांश ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन, उसके सत्य स्वरूप का विवेचन, उसकी प्राप्ति के साधन तथा उसके सम्बन्ध में प्रवर्तमान विभिन्न भ्रान्तियों का निराकरण आदि विषयों को ही समर्पित है।

महर्षि को जब इस बात का पता चला कि थियोसफिकल सोसायटी के संस्थापक द्यय- कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की ईश्वर को नहीं मानते हैं, तो उन्होंने तत्काल उन लोगों को एक चिट्ठी लिखी, जिसमें उन्होंने लिखा है- “हम नास्तिकों के खण्डन करने में आलस्य करना पाप समझते हैं।”

सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में महर्षि ने लिखा है - “यह चार्वाक सबसे बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टा को रोकना अवश्य है क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय, तो संसार में बहुत-से अनर्थ प्रवृत्त हो जाय।”

उपर्युक्त दोनों बात से यह स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानन्द नास्तिकता को बहुत बड़ा दोष मानते थे और उसे संसार से दूर करना चाहते थे।

सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें समुल्लास में उन्होंने बौद्ध तथा जैन मतों से पूर्व चार्वाक मत की समालोचना की है जिसके मूल प्रचारक के रूप में उन्होंने किसी बृहस्पति नामक पुरुष का उल्लेख किया है। इस समुल्लास में

महर्षि ने चार्वाक द्वारा किया गया ईश्वर, वेद, पुनर्जन्म, परलोक, यज्ञ आदि के निषेध एवं खण्डन को अनुचित बताया है और उसके तथाकथित ‘दर्शन’ की भी प्रबल आलोचना की है।

महर्षि ने नास्तिकवादी, भौतिकवादी चार्वाक का खण्डन तो किया ही है किन्तु न्यायदृष्टिपूर्वक! इसका प्रमाण यह है कि सत्य के ग्रहण करने में सर्वदा उद्यत रहने वाले महर्षि ने चार्वाक की कुछ बातों को ठीक भी बताया है और मान्य भी किया है जैसे कि-

१) चार्वाक ने विदण्ड और भस्म लगाने को बुद्धि और पुरुषार्थ रहित पुरुषों द्वारा अपनी जीविका के लिए बनाए जाने की बात लिखी है। इसको मान्य करते हुए महर्षि ने लिखा है - “जो विदण्ड और भस्म धारण का खण्डन है, सो ठीक है।”

२) चार्वाक के ‘लोकसिद्ध राजा ही परमेश्वर है’ इस मन्तव्य को अर्धसत्य के रूप में लेते हुए महर्षि ने लिखा है - “यद्यपि राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ माने तो ठीक है, परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो, उसको भी परमेश्वरवत् मानते हो, तो तुम्हारे जैसा कोई मूर्ख नहीं।”

३) ‘पशुश्चेन्नितः स्वर्ग... स्वपिता यजमानेन...’ इस श्लोक के द्वारा चार्वाक मृतक श्राद्ध का खण्डन करता हुआ कहता है- “जो मरे हुए जीवों का श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है, तो परदेश में जाने वाले मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न, वस्त्र और धनादि को क्यों ले जाते हैं? क्योंकि जैसे मृतक के नाम अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुँचता है, तो परदेश में जाने वालों के लिए उनके सम्बन्धी भी घर में उनके नाम से अर्पण करके

देशान्तर में पहुँचा देवें। जो यह नहीं पहुँचता तो स्वर्ग में वह क्योंकर पहुँच सकता है?”

चार्वाक के इन विचारों का अनुमोदन करते हुए महर्षि लिखते हैं- “ पशु मारके होम करना वेदादि सत्य शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा और मृतकों को श्राद्ध तर्पण करना कपोल कल्पित है। क्योंकि यह वेदादि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध होने से भागवतादि पुराण मत बालों का मत है, इसलिए इस बात का खण्डन अखण्डनीय है।”

इतना ही नहीं, सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में यज्ञों में की जाने वाली पशु हिंसा का खण्डन करते हुए महर्षि ने चार्वाक प्रदत्त उपर्युक्त युक्तियों की सहायता ली है। महर्षि ने चार्वाक प्रदत्त इन बातों को ‘युक्ति सिद्ध उपदेशों’ की संज्ञा दी है।

४) ‘ततश्च जीवनोपायो...मृतानां प्रेतकार्याणि...’ इस श्लोक में चार्वाक ने दशगात्रादि मृतक क्रियाओं को ब्राह्मणों द्वारा अपनी जीविका के लिए किया गया उपाय या लीला बताया है। महर्षि ने चार्वाक की इस बात को मान्य करते हुए अपनी टिप्पणी में लिखा है- “हां, ब्राह्मणों ने प्रेतकर्म अपनी जीविकार्थ बना लिया है, परन्तु वेदोक्त न होने से खण्डनीय है।”

यहाँ यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि महर्षि की दृष्टि में चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि मतों के द्वारा की जाने वाली वेदनिन्दा का मूल कारण वेदों के नाम पर अपना प्रयोजन सिद्ध करने वाले वेदों के झूठे टीकाकार या व्याख्यानकर्ता

हैं, जिन्होंने वेदों की भ्रष्ट व्याख्याएं प्रस्तुत कर समाज में वेदों के प्रति अनावश्यक भ्रम, अनास्था, असंतोष और तिरस्कार के भाव पैदा होने का स्थान बना दिया। महर्षि का मन्तव्य है कि महीधर सदृश वाममार्गी भ्रष्ट लोगों के द्वारा की गई वेदों की प्रमाणशून्य अशुद्ध व्याख्याएं ही चार्वाक आदि वेदविरोधी मतों के उत्थान का कारण बनीं। इसलिए चार्वाक द्वारा की गई वेदनिन्दा यथा- वेदों के बनाने वाले भाण्ड, धूर्त, निशाचर हैं, वेदों में मांस खाना लिखा है, वेदों में पण्डितों के धूर्ततायुक्त वचन हैं इत्यादि के लिए महर्षि दयानन्द चार्वाक आदि की अपेक्षा वेदों की भ्रष्ट अनर्थकारी व्याख्याएं करने वाले वाममार्गियों आदि को ही अधिक उत्तरदायी मानते हैं। महर्षि के इस विचार में सच्चाई भी है क्योंकि अगर उस युग में वेदों का सत्यार्थ प्रचलित रहा होता, तो सम्भवतः ये चार्वाक आदि नास्तिक मतों का जन्म ही न होता और न ही ये चार्वाक आदि वेदों के निन्दा अभियान में स्वयं को प्रवृत्त करते।

इन्हीं कारणों से महर्षि ने वेदों के सत्यार्थ प्रकाशन को स्व-जीवन के प्रमुख कार्य के रूप में स्थान दिया और अपने द्वारा स्थापित आर्यसमाज से भी यही अपेक्षा रखी कि उसके सदस्य वेदों के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने को ही अपना ‘परम धर्म’ मानकर वेदों के सत्यार्थ की ज्योति को सदैव प्रज्वलित रखेंगे।

□□

पृष्ठ २ का शेष

तो केवल बहाना है। असली उद्देश्य तो इस देश की स्थिर सरकार को कमजोर कर येन-केन-प्रकारेण सत्ता को हासिल करना है। यह कार्य यही जयचंद कर रहे हैं। धार्मिक ग्रंथों में सुर-असुर संग्राम का वर्णन मिलता है। यह संग्राम आदिकाल से चलता आया है। यही जयचंदी मानसिकता आधुनिक असुर है। इसी को रोकना सुरों अर्थात् देवों का कर्तव्य है। SC/ST एक्ट में भारत बंद में हिंसा होने की सम्भावना तो कोई अनाड़ी भी बता

देगा। मगर उस हिंसा के प्रतिक्रिया स्वरूप में हिन्दू समाज सवर्ण और दलित में विभाजित हो जाये। और हिन्दू समाज की वोट शक्ति टूट जाये। यही तो जयचंदों का उद्देश्य है। इसलिए अपनी एकता, अपनी शक्ति को संचित करो और लड़ो इस जयचंदी मानसिकता से क्योंकि यही हमारी सबसे बड़ी शत्रु है। हम प्रण लें कि हम अपनी सामाजिक एकता को जातिवाद के चलते इन जयचंदों के षड़यंत्र की भेंट नही चढ़ने देंगे।

□□

आर./आर. नं० १६३३०/६७

Post in Delhi R.M.S

०५-११/०५/२०१८

भार- ४० ग्राम

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20

लाइसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०

Licenced to post without prepayment

Licence No. U (DN) 144/2018-20

मई 2018

## पाठकों से निवेदन

1. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
2. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
3. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
4. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
5. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

### ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

# सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

**आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट** Ph.: 011-43781191, 09650622778  
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6 E-mail: aspt.india@gmail.com

दिनेश कुमार शास्त्री  
कार्यालय व्यवस्थापक  
मो०-६६५०५२२७७८

श्री सेवा में

ग्राम

डा०

जिला

छपी पुस्तक/पत्रिका

दयानन्दसन्देश ● मई २०१८ ● २८

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।